नया संसार

"स्वामी सत्यभक्त"

प्रकाशक—
रघुनन्दनप्रसाद सितीत
मंत्री- सत्याश्रम वर्धा

सत्याश्रम वर्धा [सी. पी.]
११९४५ इ. स.

मूल्य १।)

मुद्रक—
विज्ञानचन्द्र
मैनेजर सत्येश्वर प्रि. प्रेस

प्रस्तावना

दुनिया आगे बढ़ रही है, और वैज्ञानिक क्षेत्र में तो वह जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ चुकी है फिर भी आज मनुष्य सुखी नहीं है। और तब तक मनुष्य सुखी नहीं हो सकता जब तक दुनिया में साम्राज्यवाद और पूँजीवाद है, धर्म जाति का द्वन्द्व है, परस्पर सहयोग का अभाव है, ईमानदारी मानव का स्वभाव नहीं बन गई है, सरकार एक पंचायत संस्था नहीं हो गई है। जगत को सुखी बनाने के लिये स्वर्ग की कल्पना को जीवन में उतारने के लिये इस परिस्थिति में परिवर्तन होना जरूरी है। वैज्ञानिक क्रान्ति के साथ मानव मन और मानव की व्यवस्था में इस क्रान्ति की भी आवश्यकता है। बहुत से लोग क्रान्ति के नाम से डरते हैं, सोचते हैं न जाने उस महाक्रान्ति के होने पर हमारी और इस दुनिया की क्या दशा होगी? यह पुस्तक ऐसे लोगों के भ्रमों को दूर करती है और उनके सामने नये संसार का ऐसा चित्र रखती है जहाँ दुःख ढूँढे न मिलेगा।

ऐसा कब होगा यह आज नहीं कहा जा सकता पर पुस्तक पढ़ने से यह मालूम हो जाता है कि ऐसा होना असम्भव नहीं है और दूर भी नहीं है। पाठक इसे एक बार पढ़ें और उस स्वर्ग के दर्शन करें जो असम्भव कल्पना नहीं है किन्तु जिसे हमें जल्दी इस भूतल पर बुलाना है।

नये संसार का वर्णन एक यात्री के भ्रमण वृत्तान्त के रूप में है इसलिये एक रसपूर्ण कहानी बन गया है और सहृदय व्यक्ति की आँखों से बार बार हर्षाश्रु गिराता है। हृदय को गद्गद कर देता है।

स्वामी सत्यभक्त जी इस संसार को सुखी संसार बनाना चाहते हैं प्रत्येक प्राणी खासकर मनुष्य के आध्यात्मिक और भौतिक दुःखों का अन्त देखना चाहते हैं, और इस बारे में उनकी कोई असम्भव या अव्यवहार्य कल्पना नहीं है बल्कि एक व्यवस्थित योजना है।

]

उन्होंने जो सत्यसमाज की स्थापना की है वह भी सिर्फ इसीलिये कि यह संसार पूर्ण सुखी संसार बने। पर उन्हें सत्यसमाज का मोह नहीं है, वे तो चाहते हैं कि अपना काम पूरा करके सत्यसमाज का निर्वाण हो जाय। मनुष्य में न तो विभिन्न राष्ट्र रहें न विभिन्न मजहब, न विभक्त जाति न विभिन्न समाज। मानवमात्र का एक कुटुम्ब हो, एक दूसरे का सुख दुःख बाँटकर लेते रहें।

इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों का सिर्फ मनोरंजन ही न होगा किन्तु उन्हें इस दुनिया का सूक्ष्म दर्शन होगा, नरक और स्वर्ग की तुलना होगी और स्वर्ग को इस भूतल पर बुलाने की आकांक्षा जगेगी। आज की व्यवस्थाओं को देखने का उनका दृष्टिकोण ही बदल जायगा। आशा है पाठक इस पुस्तक से काफी लाभ उठायेंगे।

२७ फरवरी १९४८

रघुनन्दन प्रसाद विनीत,
प्रकाशक

विषय-सूची

प्रास्ताविक

मनुष्य का जितना भौतिक विकास हुआ है उतना आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ, इसलिये भौतिक-सामग्री ईर्ष्या और शोषण का निमित्त बन गई है। इसलिये दोनों के विकास और समन्वय की आवश्यकता है। इस दृष्टि से मानव-संसार की चार अवस्थाएँ कही जा सकती हैं।

१—पाशविक अवस्था अथवा हैवानी अवस्था, जब कि मनुष्य में न तो संयम है—न वैज्ञानिकता।

२—आसुरी या शैतानी अवस्था, जब कि मनुष्य में संयम तो नहीं है, पर वैज्ञानिकता है। वह प्रकृति की साधना करके

की समृद्धि उसी के सिर पर सवार हो
मनुष्य मनुष्य का नाश कर रहा है।

अवस्था, जबकि मनुष्य वैज्ञानिक नहीं है, पर संयमी है। आध्यात्मिक कष्ट उसके कम हैं, पर भौतिक कष्ट अधिक हैं।

४—दैवी अवस्था, जबकि मनुष्य संयमी भी है और वैज्ञानिक भी है। उसने आध्यात्मिक दुःखों पर और भौतिक दुःखों पर विजय पाई है। वह अहिंसा या विश्वप्रेम का साधक है और प्रकृति का भी साधक है, इस प्रकार वह सत्येश्वर का साधक है।

मानव समाज को इस दैवी अवस्था में ले जाना ही मानव-धर्म-शास्त्र का ध्येय है। इस प्रकार जब यह संसार नया-संसार बन जायगा तब उसकी कैसी काया-पलट हो जायगी, उसके वैयक्तिक सामाजिक और राजनैतिक जीवन में अर्थात् आध्यात्मिक जीवन में और भौतिक जीवन में कितना परिवर्तन होगा, कैसी क्रान्ति होगी, इसके दृश्य दिव्य-दृष्टि से आज भी देखे जा सकते हैं। आज के संसार का मनुष्य अगर अकस्मात् उस नये-ससार में पहुंच जाय, वह उस में भ्रमण करे तो कैसे दृश्य देखेगा, उस समय कैसी घटनाएँ जीवन में दिखाई देंगी, यही दिखाना इस पुस्तक का विषय है। इसलिये यहाँ भविष्य के उस यात्री की डायरी दी जाती है जो विश्व-भ्रमण कर रहा है और नया-ससार देख रहा है।

---

(१) रेलगाड़ी की यात्रा

रेलगाड़ी में सवार होते ही यात्रियों ने मेरा स्वागत किया और मेरा सामान रखवाने में मदद की, मानों कोई मित्र मुझे मिल गये हों। बैठने को जगह तो उनने दे ही दी। पर उनसे बात करने के पहिले मैंने यह जरूरी समझा कि कुली को पैसे दे दिये जायँ और दो दुअन्नियाँ निकालकर मैंने उसे दीं। पहिले तो वह हँसा और पीछे एक दुअन्नी वापिस करते हुए उसने कहा—साहब, दो आने ज्यादः हैं वापिस लीजिये।

मैंने कहा—रहने भी दो, सामान भी तो कुछ ज्यादः है।

उसने कहा—आप की इस कृपा के लिये धन्यवाद, पर न तो मेरा मन मुझे भिखारी बनने की सलाह देता है और न समाज ही इस चीज को सहन करता है।

यह कहकर उसने दुअन्नी मेरे हाथ में थमा दी और हँसता हुआ चला गया।

मैं क्षणभर उसकी तरफ देखता रह गया। नये संसार के एक कुली में भी निःस्पृहता, आत्मगौरव, ईमानदारी और सुभाषा का कितना सुन्दर समन्वय था!

गाड़ी में बैठते ही मेरे अपरिचित मित्रों ने मुझसे परिचय कर लिया, उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मैं पुरानी दुनिया से नई-दुनिया देखने आया हूं। पुरानी दुनिया की बातें सुनकर उन्हें आश्चर्य होने लगा। वे कल्पना भी न कर सकते थे कि आदमी इतना पतित कैसे हो सकता है!

गपशप करते हुए रात के नव बज गये। इस समय गाड़ी एक स्टेशन पर खड़ी थी कि इतने में एक भोंपू बजा। साथियों ने सोने की तैयारी कर दी। रेल की बेंचें सवादो फुट चौड़ी थीं और हर एक आदमी को दो फुट लम्बी जगह बैठने को मिलती थी। आदमी पूरे आराम से बैठ सकता था। एक बेंच पर कुल तीन आदमी बैठते थे। ऐसे डब्बे मैंने कभी कभी पुराने संसार में भी देखे थे। वे फौजी मामलों के लिये बनाये जाते थे। इन डब्बों का नमूना भी वैसा ही था। हाँ, बेंच जरा चौडी थी। रात में एक के ऊपर एक तीन बेंचें बना दी जाती थीं और दिन में एक बेंच पर बैठे हुए तीन यात्री रात्रि में एक के ऊपर एक बेंचों पर सो जाते थे। हर एक को छः फुट लम्बी और करीब सवादो फुट चौड़ी जगह मिल जाती थी। इस प्रकार छः छः आदमियों के बैठने या सोने लायक कमरों की श्रेणी डब्बे के इस किनारे से उस किनारे तक बनी हुई थी और बगल में रास्ता था। मैंने देखा कि बीच के कुछ कमरे खाली पड़े थे। यात्रियों की यह आदत थी कि जब तक दूसरे यात्रियों के पास जगह खाली होती तब तक वे नये कमरे में न जाते थे। ऐसे कमरे एक कुटुम्ब के लोगों या दम्पतियों के लिये रहते थे। डब्बों की इस नई बनावट को देखकर तो मुझे प्रसन्नता हुई ही, पर यात्रियों के इस व्यवहार से ही मैंने समझा कि यह नया-संसार है।

एक बात से मुझे और प्रसन्नता हुई कि डब्बे में कोई बीड़ी आदि नहीं पी रहा था। मैंने जब यात्रियों से इस बात की चर्चा की तो बहुत से यात्री तो इस बात का मतलब ही न समझे

कि बीड़ी पीने का क्या अर्थ है। हां! एक यात्री ने कहा कि—हां! पुराने जमाने में लोग बीड़ी चिलम हुक्का सिगरेट आदि पीते थे, तमाखू में आग लगाकर उसका विषैला धुआँ मुँह में खींचते थे और नाक और मुँह से बाहर निकाल देते थे। जिससे हवा बहुत गंदी और विषैली हो जाती थी, उनका कलेजा भी ख़राब होता था। सभी को बहुत तकलीफ होती थी पर क्या असभ्य और जंगली आदमी थे वे, जानकर आश्चर्य होता है! पर अब ऐसा असभ्य और जंगली कोई नहीं रह गया है।

बीड़ी आदि के बारे में उनकी ऐसी जानकारी देखकर साथी यात्रियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। मालूम हुआ कि वे भाई एक विद्यापीठ में इतिहास के प्राध्यापक हैं, इसलिये उन्हें इतनी जानकारी है नहीं तो सर्वसाधारण इस बारे में कुछ नहीं जानते।

इस गाड़ी में मुझे रात्रिभर यात्रा करना थी इसलिये मैं सबसे ऊपर की बेंचपर सोया था। मैं डटकर सोया। जब नींद खुली तब मालूम हुआ कि सूर्य की किरणें डब्बे को इधर-उधर चमका रही हैं। मेरे साथी यात्री रात में उतर गये थे और उनकी जगह दूसरे यात्री आ चुके थे। उनने मुझे जगता देखकर पूछा—कहिये, नींद तो खूब आई? मैंने कहा—जी हां।

पर मुझे सब से पहिली चिन्ता हुई सामान की। ऐसा न हुआ हो कि शाम के यात्री रात में मेरा सामान लेकर चलते बने हों। मैं तुरंत नीचे आया। देखा सामान ज्यों का त्यों है, तब मन ही मन कहा—आखिर यह नया-संसार है।

आखिर वह स्टेशन आया जहां मुझे गाड़ी बदलना थी। करीब तीन घंटे यहां ठहरना था। देखा कि प्लेटफार्मों की काया-पलट ही हो गई है। प्लेटफार्मों के दोनों छेड़ों पर साफ-सुथरे शौचागार और बन्द स्नानागार बने थे। मैंने नहाया-धोया, और भोजन किया। सारे प्लेटफार्म पर छप्पर था। और टेबुलों और बेंचों की कतारें लगी हुई थीं। कहीं पर लोग ताश खेल रहे थे, कहीं पर समाचार-पत्र पढ़ रहे थे प्लेटफार्म पर एक वाचनालय भी था। उसमें छोटी-छोटी कहानियों की पुस्तकें, मासिक-पत्र, दैनिक आदि पत्र सबके पढ़ने का इन्तजाम था। स्नानादि के बाद दो घंटे का समय यों ही निकल गया। पुराने संसार में यात्रा एक संकट या संकटों का समूह था, पर नये-संसार की यात्रा ने घर और यात्रा में विशेष अन्तर न था।

(२) मित्र के घर

मेरे मित्र ने मुझे एक पत्र लिखकर अपने घर का पूरा पता दे दिया था। वही पता मैंने तांगेवाले को दिया और उसके आधार पर उसने मुझे मेरे मित्र के घर पहुँचा दिया।

कुछ मिनिटों में ही मित्र ने उनकी पत्नी ने और उनके तीनों बच्चों ने मुझे घर के आदमी की तरह अपना लिया। मित्रजी ने थोड़े में परिचय दे दिया—ये मेरी पत्नी जी हैं, नाम है सुशील देवी, ये हम दोनों के बच्चे हैं, नाम हैं विमलकुमार, कमलाबाई, और सुधा। सबने मुझे वन्दे किया। मैंने सबको वन्दे किया। बच्चों का मैं काका बन गया।

सबसे पहिले मुझे घर दिखाया गया। घर के आगे और सड़क के किनारे की छपरी में तो हम लोग खड़े ही थे। इसके बाद का बड़ा-सा कमरा बैठक-खाना था। उसके बगल में एक छोटा-सा कमरा और था, जिसमें मेरा सामान रख दिया गया था। शायद यह अतिथिगृह था। इसके भीतर दो पलंग, दो टेबुलें और चार कुर्सियाँ रक्खी हुई थीं। इस के पीछे रसोई-घर था और एक छपरी थी। बाद में छोटा-सा आँगन और आगन के बाद एक तरफ संडास और दूसरे तरफ स्नानागार तथा दोनों को जोड़ने वाली एक छपरी थी। मकान दुमंजिला था। अतिथि-गृह के ऊपर के कमरे में दम्पति का शयनागार था, और बैठक-खाने के ऊपर का कमरा बच्चों का शयनागार। हरएक बच्चे को एक पलग, एक टेबुल और कुर्सी मिली हुई थी। दम्पति के शयनागार के बगल में एक कमरा और था, जिसमे कुछ सामान था और बच्चों के कमरा के बगल में गच्ची थी। यह एक मध्यम श्रेणी के कुटुम्ब का घर था। पूछने पर मालूम हुआ कि कुटुम्बी लोगों को प्रायः इसी रूप मे सब जगह मकान मिलते हैं। देश भर मे पक्के मकान बन गये हैं। अब किसी को कच्चे और छोटे मकानों में नहीं रहना पड़ता।

मैंने मन ही मन कहा— नये संसार की बलिहारी। हम लोग ऊपर का मकान देख ही रहे थे कि श्रीमतीजी ने मेरे मित्र से कहा— प्रमित्रजी, देखो तो कोई नीचे बुला रहा है। अब मुझे मालूम हुआ कि यहां पर पति-पत्नी एक दूसरे को प्रमित्र और प्रमित्रा कहते हैं। मुझे ये शब्द खूब रुचे। सचमुच पति-पत्नी एक दूसरे के प्रमित्र—उत्कृष्ट मित्र हैं। खैर! हम लोग नीचे उतरे।

मालूम हुआ वही तांगेवाला आया है। मेरी एक छोटी-सी पोटली तांगे में रह गई थी—वही लौटाने आया है।

उसने कहा—माफ कीजिये साहब ! आप की पोटली तांगे में रह गई थी।

मैंने कहा—इसमें माफ करने की क्या बात है ? यह तो मेरा अपराध था कि मैंने अपना सामान पूरी तरह नहीं देखा।

तांगेवाला— नहीं साहब, जब कोई यात्री किसी के घर या अपने ही घर आता है तब यह स्वाभाविक है कि वह घरवालों से मिलने-जुलने में लग जाय और कुछ सामान भूल जाय। यह तो तांगेवाले का ही काम है कि वह यात्री का सामान एक एक करके उतार दे। पर इस पोटली पर मेरी नजर ही न पड़ी।

मैं—फिर भी तुमने काफी कष्ट उठाया।

तांगेवाला—पर इसमें गल्ती मेरी थी इसलिये किसी से क्या कहूँ !

मैंने पोटली ले ली और इनाम में आठ आने देने लगा।

तांगेवाला—माफ कीजिये ! आप मेरा ईमान न तौलिये।

वह बिना अठन्नी लिये चला गया।

मेरे मित्र ने मुसकराते हुए कहा— आप याद रखिये कि आप नये-संसार में हैं।

उनकी प्रमित्राजी हँसने लगीं।

स्नान वगैरह से तो मैं निबट ही गया था, इसलिये देवीजी के आदेश के अनुसार मैं भोजन-शाला में गया। भोजनशाला में बिजली का चूल्हा था। भोजन कौन बनाता है,—आदि चर्चा छिड़ने

पर पता लगा कि—घर मे भोजन नहीं बनता। पास के सार्वजनिक भोजनगृह से रोटी-दाल-भात-शाक आदि सब सामान बनकर आ जाता है, और घर मे बिजली की पेटी मे रख दिया जाता है जिससे वह हलका गर्म बना रहता है। घर के चूल्हे पर तो सिर्फ सुबह दूध आदि पेय पदार्थ ही गरम किये जाते हैं, अथवा सार्वजनिक भोजनगृह से आये हुए पदार्थ का कोई विशेष अग्निसंस्कार करना हो तो वह किया जाता है, अथवा कभी शौक से कोई नई चीज बनाना हो तो वह बना ली जाती है। हां! सप्ताह में एक दिन सार्वजनिक भोजनगृह की भी छुट्टी रहती है, उस दिन सब लोग घर ही भोजन पकाते हैं। इस प्रबन्ध से स्त्रियों के सिर पर घरू काम नहीं के बराबर रह गया है। वे भी अर्थोपार्जन करती हैं।

मैंने पूछा—घर पकाने में और भोजनगृह से पकी-पकाई लाने में कुछ अन्तर तो पड़ता होगा।

बोले—हाँ! पड़ता तो है, पर बहुत कम। घर रसोई बनाने मे एक आदमी के पांच घन्टे निकल जाते हैं, पकी-पकाई लाने में मुश्किल से एक घन्टे की मजूदूरी देना पड़ती है। इस तरह फायदा ही रहता है। इससे नारी अर्थोपार्जन के काम मे लग सकती है और आर्थिक-दासता से मुक्त रहती है। आर्थिक-दासता सब दासताओं की जननी है।

मैंने कहा—अवश्य ही इस उपाय से नारी प्रत्यक्ष रूप में दासता से मुक्त रहती है, पर जब नारी अर्थोपार्जन मे पुरुष के समकक्ष नहीं रह सकती तब अप्रत्यक्ष रूप मे उसने दासता आती ही है।

सन्तान प्रसव और पालन के कारण वह पुरुषों की होड़ नहीं कर सकती।

मित्र—नहीं कर सकती, पर यह उसका अपराध नहीं है, समाज सेवा है, इसलिये इसका आर्थिक-भार समाज या कुटुम्ब को उठाना चाहिये। नये संसार में हरएक नारी को सन्तान प्रसव के समय दो माह की सवेतन छुट्टी मिलती है। काम पर जाते समय धात्रीसदन में उसके बच्चों के संरक्षण की जिम्मेदारी ली जाती है।

मैं—तब ऐसी हालत में स्त्रियों को कौन काम पर रखता होगा?

मित्र—सरकार। सरकार के हाथ में अब बहुत काम हैं, उन कामों पर पहिले स्त्रियों को रक्खा जाता है फिर पुरुषों को। इसलिये सरकारी कामों मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों की सख्या दुनी है। वेतन उन्हे पुरुषों के बराबर ही दिया जाता है। घरू दूकानों पर भी स्त्रियाँ काम करने के लिये रक्खी जाती हैं, इस बारे में कुछ तो सरकारी नियम हैं जिनका पालन करना पड़ता है, पर सरकारी नियम से भी बढ़कर आदमी की आदमियत है, इससे अब स्त्रियों को आर्थिक-दासता में नहीं रहना पड़ता।

मैं—घर का खर्च किसके जिम्मे रहता है?

मित्र—दोनों के। दोनों ही अपनी अपनी आमदनी के अनुसार घर के खर्च में हाथ बटाते हैं और बचत बेंकों में रखते हैं।

मैं—घर का काम कौन करता है?

मित्र—घरू काम अब थोडा है, वह प्रमित्र और प्रमित्रा मिलकर कर लेते हैं। काम ही क्या है—साफ-सफाई और परोसना,

वगैरह। ज्यादातर पुरुष साफ-सफाई का काम करते हैं और परोसने वगैरह का काम नारियाँ।

मैं—और बर्तन मलने का काम?

मित्र—बर्तन मलने का काम ही कितना है! बिजली से गरम पानी हो जाता है, वह एक हौज में छोड़ दिया जाता है, उसमें बर्तन डाल दिये और बर्तन साफ करने का सोड़ा डाल दिया। बस! बर्तन साफ हो गये। पर सच बात तो यह है कि घरू काम ज्याद. हो या कम, दोनो मिलकर कर लेते हैं, बडे बच्चे भी इसमें हाथ बटाते हैं। काम न करनेवाला आदमी नीचा समझा जाता है और काम करनेवाला ऊँचा, इसलिये सब लोग होड़ लगाकर अधिक से अधिक काम करने की कोशिश करते हैं। एक तरह से घर में काम ही दिखाई नहीं देता। घर की मरम्मत वगैरह भी हम लोग कर लेते हैं।

मैं—पर घर तो ये सरकारी हैं। क्या आप इनका भाड़ा देते हैं?

मित्र—नहीं, घर पर एक तरह से हमारी ही मालिकी है जब तक हम न छोडना चाहें तब तक घर हमारे पास ही रहेगा। अगर हमें किसी कारण से दूसरे शहर में बसना हो तो हम यह घर सरकार के सुपुर्द कर देंगे और इसी कीमत का दूसरा मकान उस शहर में सरकार से ले लेंगे। फर्नीचर वगैरह भी हम इसी तरह बदल सकते हैं। इस प्रकार मकानों की अदला-बदली होती रहती है। इस ढंग से हमें घर की मालिकी का भी सुभीता है और घर छोड़ने का भी सुभीता।

मैं–इसमें सन्देह नहीं कि यह एक बड़ी सुन्दर व्यवस्था है, फिर भी इसमें एक परेशानी तो है ही कि आप जैसी संगति मे मकान चाहते होंगे वैसा न मिल पाता होगा। सरकार जो मकान देना चाहती होगी वही मिलता होगा। कल्पना करो, सरकार ने ऐसी जगह मकान दिया जहा चारों तरफ मास-भक्षी लोग बसे हुए हैं तब आपकी परेशानी बढ सकती है। असभ्य लोगों के बीच मे रहना भी आपको पसन्द न आयगा।

मित्र–भाई! अब इस ससार में सभ्य-असभ्य का भेद या कोई जातिभेद नहीं है। अब सभी सभ्य हैं, सभी उच्च हैं। और मास तो कोई खाता ही नहीं। इसलिये कहीं भी रहो, सब जगह सत्संगति है; फिर भी अगर कोई मकान अपने को पसन्द न हो तो बदल सकते हैं। सब जगह मकान खाली होते रहते हैं और नये भी बनते रहते हैं।

(३) नगर की सैर

छुट्टी का दिन था। आज मेरे मित्र ने मुझे शहर घुमाने का कार्यक्रम बनाया। उनकी प्रमित्राजी भी साथ हो गईं और बच्चे भी! कितना साफ-सुथरा शहर था! मैंने गौर से देखा कि कोई आदमी सड़क पर इधर-उधर कचरा नहीं डाल रहा था। कोई इधर-उधर थूँकता भी नहीं था, जब कि पुरानी दुनिया के लोग तो रेल में भी थूँकते थे और रोकने पर लड़ने को तैयार हो जाते थे। खैर!

घूमते घूमते हम लोग अजायबघर पहुँचे। अच्छा संग्रह था। लोग पुरानी दुनिया के राजा महाराजा सम्राटो के चित्रों को

बड़े गौर से देख रहे थे और उनका मजाक उड़ा रहे थे। पुरानी दुनिया के सरकारी अफसर भी बड़ी अद्भुत सूरत में चित्रित किये गये थे। चित्रों के नीचे उनके कारनामों का बड़ा वर्णन था, जिसे पढ़कर लोग आश्चर्य से कह रहे थे कि आदमी भी कैसा शैतान हो सकता था !

वहां से हम लोग चिड़ियाघर पहुँचे। वह भी पशु-पक्षियों का अच्छा संग्रह था। वहां मैंने शूकर को देखकर कहा—यह तो बहुत साधारण जानवर है, यह यहां क्यों रक्खा गया है ?

मित्र—ये पुरानी दुनिया के अवशेष हैं, जानकारी के लिये किसी तरह सुरक्षित रक्खे गये हैं।

मैं—तो क्या ये जानवर बाहर नहीं रहे !

मित्र—न जंगलों में जंगली जानवर हैं, न हरिण हैं न शूकर न साप। यहां तक कि मच्छरों आदि का भी नाश कर दिया गया है।

मैं—तब तो बड़ा हत्याकांड हुआ होगा !

मित्र—हां ! मच्छरों सापों आदि का तो हत्याकांड ही हुआ, चूहों का भी बहुत अंशों में यही हुआ, शेर आदि की भी कुछ कुछ ऐसी ही दशा हुई, पर हरिण शूकर आदि का नाश बिना मारे ही किया गया।

मैं—क्या उन्हें बीमार बनाकर या भूखा रखकर मारा गया ?

मित्र—नहीं। न उन्हें बीमार किया गया, न भूखा रक्खा गया, बल्कि उन्हें निर्वंश किया गया।

मैं—मैं अब भी नहीं समझा।

मित्रने हँसकर कहा-जगह जगह नरद्वीप और मादाद्वीप बनाये गये थे। नरद्वीप में नर ही नर रक्खे जाते थे और मादाद्वीप में मादा ही मादाएँ। फल यह होता था कि वे सन्ततिहीन हो जाते थे। आज अब वे सिर्फ चिडियाघरों में रह गये हैं। अब न खाद्य-सामग्री बर्बाद होती है, न आने-जाने में मनुष्य के सिर पर कोई उपद्रव बरसता है। पहिले जंगली जानवरों और चूहों आदि से करोड़ों मन अनाज बर्बाद हो जाता था और सांपों तथा मच्छर आदि से लाखों आदमी मर जाते थे।

मैं-पुराने संसार में जब मौत के इतने उपाय थे तब तो आदमी इतने बढते जाते थे, अब इस नये संसार में क्या होता होगा? अब तो बालमृत्यु भी न होती होगी, अकाल भी न पडते होंगे युद्ध भी न होते होंगे।

मित्र-जी हां! यह सब नहीं होता। फिर भी जनसंख्या नहीं बढ रही है या नाममात्र को बढ रही है। हर एक आदमी सन्तति नियमन की पूरी पाबन्दी करता है, तीन से अधिक संतान पैदा करने का रिवाज नहीं है। सन्तति नियमन के अनेक निर्दोष उपाय निकल गये हैं।

मैं—फिर भी लोग यह बात कैसे पसन्द करते होंगे कि अपना कुटुम्ब या अपना समाज कम किया जाय?

मित्र—देखिये! अब इस प्रकार विभाजक कौटुम्बिकता का कहीं पता नहीं है, न अपना अपना अलग समाज है। अब तो मनुष्यमात्र का एक समाज है। पुराने संसार में एक जाति दूसरी जाति पर सवार होना चाहती थी, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण

करना चाहता था, और लड़कर मरने के लिये अधिक से अधिक बच्चे पैदा करना चाहता था। अब यह शैतानियत इस संसार में कहीं नहीं है। मानव समाज के प्रति अपना कर्तव्य समझकर स्त्रियाँ अधिक से अधिक तीन बच्चे पैदा कर देती हैं, इसके बाद सन्तति नियमन के उपाय काम में लाये जाते हैं। हां! अगर भूल-चूक से चौथा बच्चा पैदा हो जाय तो घर का एक बच्चा किसी दूसरे कुटुम्ब में गोद दे दिया जाता है।

मैं—जिनके सन्तान न होती होगी उन्हीं को बच्चे गोद दिये जाते होंगे। सन्तानवाली स्त्रियाँ क्यों गोद लेती होंगी?

मित्र—जिनके तीन से कम बच्चे रहते हैं वे भी गोद लेती हैं, क्योंकि किसी तरह तीन बच्चे हो जाने पर स्त्रियाँ सन्तान-प्रसव के दायित्व से मुक्त हो जाती हैं।

मैं—क्या इस प्रकार गोद लिये गये बच्चे मा का प्यार पाते होंगे?

मित्र—पाते हैं। इस विषय में मैं आप से यही कहना चाहता हूं कि यह नया संसार है। यहां मनुष्यमात्र को एक कुटुम्ब मान लिया गया है।

इतने में सुशीला देवी ने कहा—आप शायद नारियों में इतनी उदारता की कल्पना भी नहीं कर पाते?

मैंने कहा—कल्पना ही कर पाता हू।

सुशीला—पर नये संसार में आप ऊंची से ऊंची कल्पना को घर घर प्रत्यक्ष रूप में देखेंगे।

मैंने कहा—यही देखने तो आया हूं।

बातें करते करते हम लोग चिड़ियाघर के बाहरी फाटक पर आगये थे। मित्रजी ने सुशीलादेवी से कहा—प्रमित्राजी, अब किधर चला जाय?

सुशीलादेवी ने कहा—आज तो अब घर ही चलें। अब धीरे धीरे इन्हें सुबह-शाम सैर करा दी जायगी।

हम लोग ट्राम में बैठकर घर पहुँचे।

दरवाजा खोलते ही एक पत्र पड़ा हुआ मिला। वह मित्रजी के नाम पर था। उसमें लिखा था—

श्री प्रसन्नकुमार जी!

वन्दे।

दो बार आपको टेलीफोन किया गया पर कोई उत्तर न आया, इससे मालूम हुआ कि आप बाहर गये हैं। इसलिये यह पत्र भेजा है। आप घर आते ही टेलीफोन पर मुझसे बात करने की कृपा करें। आपका सेवक—

दयाराम

पुलिस प्रधान

पुलिस के पत्र की बात जानते ही मेरे होश उड़ गये। मैंने समझा आई कोई आफत। पुलिस की बला आखिर यहां भी है! हां! इतना ही है कि नये-संसार में पुलिस के लोग काफी नम्रता से पेश आते हैं।

मित्र ने टेलीफोन उठाकर बात की—'हां....हां हां...ठहरे हैं........मुझे तो नहीं मालूम पूछता हूं।'

मेरे मित्र ने मुझसे पूछा—आपका क्या कुछ गुमा है ?

मैंने पहिले तो कहा—नहीं। फिर पाकिट देखा तो मालूम हुआ कि पाकिट से छः-सात सौ रुपये के नोट गायब हैं। जिस बटुए में वे रक्खे थे, वह भी नहीं है। मैंने घबराकर कहा– अरे ! मेरा बटुआ गुम गया है, उसमें तो छः-सात सौ के नोट थे।

मित्र—मालूम होता है कि घर से निकलते ही वह कहीं गुम गया।

मैंने रंजीदी आवाज में कहा–यही संभव है।

मित्र ने टेलीफोन उठाया और कहा–देखिये, मैंने मित्र से पूछ लिया है, उनका बटुआ गुमा है। उसमें करीब छः-सात सौ रुपये के नोट थे, उनका परिचय-पत्र था और उनके नाम पर भेजा हुआ मेरा भी एक पत्र था। उसी पत्र से आप को मेरा पता लगा होगा ····तीन घंटे से आकर पड़ा है ! कोई राहगीर दे गया था। ठीक है तीन घंटे तक आपको उसकी रखवारी करना पड़ी इसका मुझे खेद है·········कोई बात नहीं। खैर ! आप भेज दीजिये।

मैंने देखा कि पुलिस-प्रधान बड़ी नम्रता से हँस-हँसकर बात कर रहा था। टेलीफोन के पट पर उसका चित्र दिखाई दे रहा था। किसी तरह का अहसान जताने का भाव उसके चिहरे पर नहीं था।

अब मित्र की जगह मैं टेलीफोन पर आ गया। मैंने पुलिस से कहा—आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद।

पुलिस-प्रधान–मैं तो आप लोगों का नौकर हूं वेतन पाता हूं, तब नौकरी बजा दी तो इसमें धन्यवाद का क्या काम हो गया ?

अगर आप अपने नौकरों को धन्यवाद देंगे तो उन्हें क्या देंगे जो आपका बटुआ पुलिस चौकी पर दे गये थे ?

मैं जरा लज्जित हुआ, और कहा— उन श्रीमान् का तो मुझे दर्शन ही नहीं हो पाया।

पुलिस-प्रधान ने हँसकर कहा— उन्हें आपकी तरफ से मैंने धन्यवाद दे दिया है।

मैंने कहा—तो उन्हें दिया हुआ धन्यवाद तो मुझसे ले लीजिये, इतना ऋण तो चुकाने दीजिये।

पुलिस-प्रधान हँसने लगा, कहा—आदाब!

मैंने कहा—आदाब!

थोड़ी देर में पुलिस का एक सिपाही आया, वह बटुआ दे गया।

मैंने कहा—इनाम का देनलेन तो आपके इस नये संसार में नहीं है, फिर भी अगर कोई व्यक्ति सरकार की किसी विशेष सेवा से खुश होकर कुछ देना चाहे तो इसका कुछ उपाय है या नहीं ?

पुलिस—इनाम का देनलेन तो है पर हम लोग सिर्फ सरकार की तरफ से मिला हुआ इनाम ले सकते हैं। हां! आप कुछ देना चाहें तो चौकी पर धर्मादा-पेटी है, उसमें कुछ डाल सकते हैं।

मैं—तो क्या आप ये दस रुपये उस पेटी में डालने की कृपा करेंगे ?

पुलिस—मैं आपकी पोटली सिर पर रखकर ले जा सकता हूं, पर इसके लिये तो क्षमा ही कीजिये!

इतना कहकर और आदाब बजाकर वह चला गया।

मैं उसकी तरफ देखता रह गया। मन ही मन कहा—कहाँ पुराने संसार की कृतघ्न, ठग लुटारू, घमडी और अकड़बाज पुलिस, और कहाँ नये संसार के ये देवदूत!

(४) न्यायालय के दर्शन

मित्रजी से मैंने कहा— आज तो मैं न्यायालय की तरफ जाऊँगा। पर, मैं आप लोगों को विशेष कष्ट नहीं देना चाहता, इसलिये आप मुझे समझा दीजिये जिससे मैं अकेला ही न्यायालय के दर्शन कर आऊँ।

मित्र ने कहा—इसके लिये समझाने की कोई जरूरत नहीं है, आप ट्राम में बैठ जाइये और पूछते जाइये, आपको कोई कष्ट न होगा।

मैंने सोचा—चलो, इस बारे में भी नये-संसार का अनुभव किया जाय। मैं भोजन करके ट्राम में बैठ गया और ट्राम के कर्मचारी ने मुझे सब ठीक ठीक बता दिया। मैं कचहरी पहुँच गया।

कचहरी के फाटक पर एक बड़ा-सा कार्यालय था। वहाँ सारी कचहरी के बारे में जानकारी हासिल की जाती थी। कौन हाकिम किस नम्बर के कमरे में बैठा है? उसका क्या पद अधिकार और कार्य है? उसके इजलास में कौन कौन से मुकद्दमे हैं? वे मुकद्दमे किस क्रमसे लिये जायँगे? और करीब उनका समय क्या होगा, आदि सब बातों का वहीं पता लग जाता था। शहर के बहुत से लोग टेलीफोन के जरिये अपने मुकद्दमे के लिये जाने का क्रम और समय पूछ लेते थे। इस प्रकार लोग समय पर आते

थे और समय पर जाते थे। किसी का अधिक समय बर्बाद न होता था।

उसी कार्यालय से इस बात का पता भी लग जाता था कि कचहरी में आकर किस ढंग से क्या कार्य किया जाना चाहिये। कोई अर्जी देना हो, कोई अपील दायर करना हो तो कार्यालय के कर्मचारी उसे सब कुछ बता देते थे। और न तो वे इसके लिये इनाम लेते थे, न किसी का काम टालते थे। जो आदमी कभी कचहरी न आया हो और जिसे कचहरी का बिलकुल अनुभव न हो वह भी कचहरी में आकर बिना किसी परेशानी से अपना काम कर जायगा, उसे सब जानकारी कचहरी की ओर से दी जायगी। और इसके लिये उसे पैसा खर्च न करना पड़ेगा।

यहीं पूछने से पता लगा कि यहां न्याय की बिक्री नहीं होती। पैसा न होने पर भी हरएक मनुष्य न्याय प्राप्त कर सकता है। वकीलों की कोई खास जरूरत नहीं होती। सद्‌सद्विवेक बुद्धि से जो बात न्यायोचित मालूम होती है–कचहरी में भी वही न्यायरूप सिद्ध होती है। कानून के अक्षर न्याय मे बाधक नहीं होते, बल्कि जब कानून न्याय में बाधक मालूम होता है तब वह जांच के लिये प्रान्तीय न्यायालय मे भेज दिया जाता है। जब न्याय दिया जाता है तब इस बात की कोशिश की जाती है कि दोनो पक्ष उसके औचित्य को समझे। न्याय-विभाग और शासन-विभाग बिलकुल अलग अलग है। शासकों का कोई असर न्याय-विभाग पर नहीं होता।

कार्यालय से जब मैं भीतर की ओर बढ़ा तो देखा कि वहां वादी–प्रतिवादियों के ठहरने के लिये अच्छे विश्राम-गृह बने हुए

है, जहां पीने के लिये पानी और पढ़ने के लिये पुस्तकों और समाचार-पत्रों का अच्छा इन्तजाम है। जिसके मुकदमे का नम्बर आता है वह यहीं से बुला लिया जाता है। इस समय किस इजलास में किस नम्बर का मुकदमा चल रहा है—इसकी सूचना भी यहीं लगी रहती है। जब कोई बुलाया जाता है तब उसका नाम काफी आदर से 'श्रीमान्‌जी' आदि लगाकर लिया जाता है। मैंने देखा कि ऐसे स्थान कई जगह बने हुए हैं। पास में खान-पान की सामग्री की कुछ दूकानें भी हैं। जब कोई वादी प्रतिवादी या गवाह कचहरी के अहाते में आता है, तब वह इजलास के कर्मचारी के पास अपनी हाजिरी डलवा देता है। अनुपस्थित होने के कारण किसी का मुकदमा खारिज नहीं किया जाता। अगर कारण ठीक न हो तो कुछ हर्जाना लिया जाता है। लाच-रिश्वत का तो कहीं पता ही नहीं है।

लोगों से पूछताछ करने से जो मुझे जानकारी मिल रही थी—वह कम आश्चर्यजनक नहीं थी, पर ज्यों ज्यों मैं आगे बढ़ता जाता था त्यों त्यों मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। बाहर घूमघामकर आखिर मैं जिला साहब के इजलास में चला गया। साहब ग्यारह बजे आते थे और अभी ग्यारह बजने में पांच मिनिट बाकी थे।

पुराने संसार में न्यायाधीशों के लिये ऊँची वेदी पर कुर्सी रक्खी जाती थी, पर यहां यह बात नहीं थी। हाकिम की कुर्सी साधारण जमीन पर थी और उनकी टेबुल के सामने बहुत-सी कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं जिन पर वकील वादी-प्रतिवादी आदि बैठते

थे। जब मैं पहुंचा तब एक भाई बैठे हुए थे। मै भी वहीं एक कुर्सी पर बैठ गया।

ज्यों ही हाकिम आये कि उनके सन्मान में मैं उठ खड़ा हुआ और सलाम की। हाकिम ने क्षणभर मेरी तरफ गौर से देखा, फिर कहा—क्या आपको मुझसे कोई गैर-कानूनी या अन्याय-पूर्ण लाभ उठाना है?

हाकिम का यह प्रश्न सुनते ही मैं घबरा गया। बड़ी मुश्किल से और सूखे गले से मैंने कहा—जी नहीं!

हाकिम—फिर आपने मुझे रिश्वत क्यों दी?

मैं चकित होकर बोला—साहब, मैंने तो आपको एक भी पैसा नहीं दिया।

हाकिम—जी हां, आपने एक पैसा तो नहीं दिया है, पर मुहरों की थैली तो दी है।

मैं क्षणभर चुप रहा, फिर आश्चर्य से कहा—साहब, माफ कीजिये! मैं आपकी बातों का अर्थ नहीं समझ पा रहा हूं।

हाकिम खिलखिलाकर हँस पड़े, फिर बोले—भाई साहब, आप यह तो मानते हैं कि जब कोई आदमी खा-पीकर सन्तुष्ट हो जाता है तब अपने पैसे से नाम और इज्जत बढ़ाना चाहता है।

मैंने कहा—जी हां!

हाकिम—तब मेरे आने पर खड़े होकर और मुझे सलाम करके आपने वह इज्जत मुझे क्यों दे दी, जो हजारों रुपये खर्च करके भी मैं नहीं पा सकता था?

मैं—जनसेवकों का विनय करने मे तो कोई हानि नहीं है, बल्कि यह तो शिष्टाचार है।

हाकिम—तो आप मुझे जनसेवक समझते हैं! क्या आप समझते हैं कि मैं यह जनसेवा मुफ्त में करता हूं? क्या इसके लिये वेतन नहीं लेता? यदि ऐसी तुच्छ सेवा को बेचनेवाला जन-सेवक कहलायगा तो निःस्वार्थ जनसेवक को आप क्या कहियेगा?

मैं—खैर! निःस्वार्थ जनसेवक समझकर न सही, पर एक विद्वान समझकर ही आपका विनय कर लिया जाय तो क्या हर्ज है?

हाकिम—पर क्या आपको मालूम नहीं कि इस नगर में ऐसे एक से एक विद्वान पडे हैं जिनके चरणों में बैठकर मैं वर्षों सीख सकता हूं। क्या आप उन्हें प्रणाम कर आये?

मैं—जी नहीं, पर आपको सलाम करना वास्तव में आपको सलाम करना नहीं है, किन्तु उस कुर्सी को सलाम करना है जो न्याय की सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है।

हाकिम—तब तो आपके समान मुझे भी उस कुर्सी को सलाम करना चाहिये। पर, आपने देखा ही होगा कि आते समय मैंने उस कुर्सी को सलाम नहीं किया, तब आपको क्या आवश्यकता मालूम हुई कि आप उस कुर्सी को सलाम करें? और कुर्सी को ही सलाम करना था तो मेरे आने के पहिले कुर्सी यहा पड़ी ही थी आप उसे सलाम कर लेते, मेरे आने पर ही आपको सलाम करने की क्या जरूरत पड़ी।—यह कहकर हाकिम हँसने लगे।

अब मैं निरुत्तर था, पर सोच रहा था कि ऐसी निरुत्तरता पर मनों हाजिर-जवाबी न्यौछावर की जा सकती है। क्षणभर

चुप रहकर मैंने कहा—साहब ! मैं पुराने संसार का प्राणी हूं, जिस ससार में मनुष्य के आकार में ज्यादःतर हैवान या शैतान ही रहते हैं। नये ससार में आकर मैं पद पद पर भूल रहा हूं। मैं एक यात्री की हैसियत से इस दुनिया में घूमने आया हूं।

हाकिम-ओह ! माफ कीजिये ! मुझे मालूम नहीं था कि आप नई दुनिया में यात्रा के लिये आये हैं। मैंने भूल से आपको यहीं का नागरिक समझा था। अब आप यहा पधार जाइये !

यह कहकर हाकिम ने मुझे अपने पास बुलाया और अपने पास की कुर्सी पर बिठाकर कहा—अब आप आराम से यहा बैठिये और यहां की कार्य-पद्धति देखिये !

मै वहा शाम तक बैठा और सब कार्य देखता रहा। क्षणभर को मैं कल्पना भी न कर सका कि मैं जिलेभर के हाकिम के इजलास में बैठा हूं।

एक मामला आया, मालूम हुआ प्रतिवादी हाजिर है, वादी ने सिर्फ चिट्ठी भेज दी है और विशेष बातचीत करने के लिये अपने टेलीफोन का नम्बर भेज दिया है। इसी आधार पर मामले का फैसला हो गया।

एक मामले में वादी-प्रतिवादी दोनों गैर-हाजिर हैं और पत्रों के आधार पर कार्य हो गया है।

कुछ भाइयों ने टेलीफोन से पूछा कि जो नया कानून बना है उसका ठीक ठीक रूप समझाइये। हाकिम का काफी समय इसी तरह के समाधान में गया।

कुछ समय छोटे छोटे हाकिमो को सलाह देने में गया। मैंने देखा कि ऐसे मौकों पर जनता के पक्ष पर ही जोर दिया जाता

और पुलिस को दबाया जाता है, और उन्हें यह चेतावनी दी जाती है कि तुम लोग यह भूल न जाना कि तुम जनता के सेवक हो। जहां वादी प्रतिवादी प्रजा-पक्ष के होते थे—वहां तो किसी के साथ पक्षपात न होता था; किन्तु जहां सरकारी-पक्ष या प्रजा-पक्ष में मतभेद होता था—वहां प्रजा की तरफ थोड़ा पक्षपात रहता था। और हाकिम मुसकराकर सरकारी-पक्ष से कह देते थे कि, आखिर तुम लोग प्रजा की सेवा के लिये हो।

एक सरकारी वकील, जिन में एकाध कण पुरानी दुनिया का रह गया था, हाकिम से बोले—भाई साहब, इस कानून को निकले तीन महीने हो गये, फिर भी इसका पालन प्रतिवादी ने नहीं किया है और सरकारी-पक्ष अगर एक दिन की भी देर कर दे तो चारों तरफ से उसपर दुलत्तियाँ पड़ने लगती हैं।

बात सुनते ही हाकिम का चेहरा कुछ गम्भीर हो गया। ग्लानि से क्षणभर के लिये उनकी नाक सिकुड़ गई। फिर भी उनने अपने क्रोध पर अंकुश लगाते हुए कहा—देखो भाई, मालिक अगर कोई गलती करे तो नौकर उसे नम्रता से सलाह ही दे सकता है, पर अगर नौकर गलती करे तो मालिक उसे कठोर दंड दे सकता है—निकाल बाहर कर सकता है। प्रजा 'मालिक' है, सरकार 'नौकर' है। हरएक सरकारी कर्मचारी को प्रजा की तरफ से वेतन मिलता है, जब कि प्रजा को सरकार से रोटियाँ नहीं मिलतीं। इस बात की याद सरकारी कर्मचारी को याद रखना चाहिये।

सरकारी वकील का मुँह जरा-सा रह गया। उसने कहा—मैंने तो व्यवस्था की दृष्टि से यह बात कही थी, फिर भी मैं भूल स्वीकार

करता हूं।

हाकिम ने जरा तेजी से कहा—'फिर भी' लगाकर भूल स्वीकार नहीं की जाती भाई! सरकार को यह बात पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिये कि उसके कर्मचारियों को जनता पर हुकूमत नहीं करना है, किन्तु उसकी नौकरी करना है। जो अधिकार उनके हाथों मे दिये गये हैं—वे अपने बड़प्पन या स्वार्थ की रक्षा के लिये नहीं है, किन्तु जनता को आराम पहुंचाने के लिये हैं। प्रजा के लिये जो व्यवस्थाएँ बनायी जाती हैं उन्हें घर घर पहुँचाना सरकार का फर्ज है। फिर भी किसी से भूल हो तो देखना चाहिये कि उससे जनता का क्या नुकसान हुआ है? जनता का अगर कुछ नुकसान न हुआ हो या न हो सकने की सम्भावना हो तो सिर्फ इसीलिये किसी को अपराधी नहीं ठहराया जा सकता कि उससे सरकारी कर्मचारी की परेशानी बढ़ी है। सरकारी कर्मचारियों की सुविधा के लिये जनता की स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं डाली जा सकती। 'कानून न्याय के लिये है और न्याय जनता की सुख-शान्ति के लिये है'—इस महामन्त्र को आप कभी न भूलें। इस महामन्त्र के आधार पर कोई भी व्यक्ति आपकी व्यवस्थाओं और कानूनों के औचित्य के बारे में मांग कर सकता है और आप औचित्य सिद्ध न कर सकें तो उसे अस्वीकार भी कर सकता है। सरकारी नौकरों की परेशानी बचाने के लिये जनता बाध्य नहीं है, पर जनता को परेशानी से बचाना सरकारी नौकरों का कर्तव्य है। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न?

सरकारी वकील–जी हां ! समझ रहा हूं और सच्चे दिल से अपनी गलती महसूस कर रहा हूं। और मुझसे यह गलती क्यों हुई, उसका कारण भी आपको बता देना चाहता हूं।

हाकिम–जब आपको गलती समझ में आ गई तब कारण बताने की कोई जरूरत नहीं है।

सरकारी वकील–जी नहीं, कारण कुछ सुनाने लायक है।

हाकिम–तो सुनाइये !

सरकारी वकील–बात यह है कि मैं पुरानी दुनिया के इतिहास का अध्ययन किया करता हूं। पेशे के कारण मेरा अध्ययन कानूनी विभाग का होता है। कल मैं संग्रहालय में पुरानी दुनिया की कचहरियों के कुछ रिकार्ड पढ़ गया। उन से मुझे मालूम हुआ कि वहां सरकार के सौ खून माफ थे पर प्रजाजन की मामूली गलती उसे कुचल देती थी। सरकार वहां मालिक थी और प्रजा दासी। न जाने कैसे उसी पाप की कुछ बूंदें मेरे दिमाग में घुस गई और यही कारण है कि आज मैं प्रजा का अपमान करनेवाली बात कह गया।

हाकिम ने मुसकराकर कहा–ओह ! पुरानी दुनिया के साहित्य में बड़ा असर है। आज तो अपने यहां पुरानी दुनिया के एक मेहमान बैठे हुए हैं। मैं समझता हू वे आपके वक्तव्य का समर्थन करेंगे !

यह कहकर हाकिम ने मेरे मुंह की ओर देखा। मैंने कहा—जी हां ! पुरानी दुनिया को पूरा नरक समझिये ! वहां

शैतानों का ही बोलबाला है।

हाकिम--क्या वहां सरकार नहीं है?

मैं--है, पर न होने से बदतर। सरकार का छोटा से छोटा अफसर प्रजा के बड़े से बड़े आदमी से भी अपने को अधिक शक्तिशाली समझता है। लाँच-रिश्वत का बाजार गर्म है। छोटे से छोटे राज्यकर्मचारी के हाथ में इतनी सत्ता और सुविधा है कि वह बड़े बड़े प्रजा-सेवकों को कुचल सकता है। उनकी आलोचना की, कि प्रजाजन मारा गया। देश-रक्षा के नाम पर वह जेल में वर्षों सड़ाया जायगा, वह बोल नहीं सकता, लिख नहीं सकता। छापाखानेवाले के सिर पर नंगी तलवार लटकती रहती है। पहिले तो कानून ही ऐसे गजब के हैं कि उनमें कोई भी आदमी बात की बात में फँसाया जा सकता है, भले ही वह अपराधी न हो। अगर कानून की मार से कोई बच भी जाय तो बड़े बड़े अफसर विशेष हुक्म निकालकर जिस चाहे को जेल भेज सकते हैं, उन्हीं के बनाये गये न्यायालयों तक में उनका विचार न किया जायगा। पुरानी दुनिया की अंधेरशाही और प्रजा के कष्टों का आप से क्या बयान करूं! आपके यहां का अच्छा से अच्छा कल्पक कवि अगर नरक की भयंकर से भी भयंकर कल्पना करे तो पुरानी दुनिया के समान न कर पायगा।

मेरी बात से क्षणभर को तो हाकिम मुसकराये, किन्तु तुरन्त ही उनके चेहरे पर शोक और घृणा नाचने लगे। अन्त में जरा गम्भीर मुद्रा से कहा--मनुष्य कैसी हैवानियत और शैतानियत

की अवस्थाओं में से गुजर चुका है, यह जानकर आज आश्चर्य होता है। इसके बाद हाकिम ने मुंशी से कहा—अब इसके आगे कौनसा मुकद्दमा है?

मुंशी ने कहा–विज्ञापन वाला। इस बारे में वादी और दोनों प्रतिवादियों के पत्र आये हैं। वादी का कहना है कि मैंने प्रतिवादी का विज्ञापन पढ़कर दवा मँगाई, पर उसका उपयोग करके मुझे मालूम हुआ कि विज्ञापन की भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण है और वह पाठक के मन में भ्रम पैदा करती है। पहिले प्रतिवादी का कहना है कि 'थोड़ी बहुत अतिशयोक्ति विज्ञापन में रहती ही है; फिर भी न्यायालय जैसी सलाह देगा उसका पालन किया जायगा'। दूसरे प्रतिवादी का कहना है कि 'पत्रों में झूठे या अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापन कभी आते नहीं हैं, इसलिये मैंने जांच-पड़ताल नहीं की और धोखे से विज्ञापन छप गया। अब आगे-पीछे के लिये न्यायालय जैसी सलाह देगा उसके अनुसार कार्य किया जायगा'।

हाकिम ने कहा–ठीक है, पहिले प्रतिवादी को सूचना भेज दो कि 'आप अपना यह विज्ञापन किसी पत्र में न छपाइये और एक महीने तक उसका विरोधी विज्ञापन छपाइये, जिससे वे लोग दवा वापिस कर सकें---जिनको दवा से असन्तोष रहा है'। दूसरे प्रतिवादी को सूचना भेज दो कि 'उक्त विज्ञापन का खण्डन एक माह तक उनके पत्र में छापा जाय'।

इसके बाद हाकिम ने मेरी ओर मुँह करके कहा—आप के यहां अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापनों पर नियन्त्रण करने के लिये क्या

किया जाता है ?

मैंने कहा—हमारे यहां ? हमारे यहां की न पूछिये । अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापन देना तो एक अच्छी से अच्छी और प्रशंसनीय कला समझी जाती है, पर झूठे से झूठे विज्ञापन देना भी कला में शुमार है। कानून तो इसमें कोई बाधा डालता ही नहीं। पत्र के संचालक खुल्लमखुल्ला इस वृत्ति को पोषण देते हैं, यहां तक कि अगर विज्ञापन के रेट से अधिक दाम दिये जायँ तो संचालक लोग सम्पादकीय टिप्पणी के रूप में भी विज्ञापन निकाल दिया करते हैं, भले ही वे विज्ञापन झूठे और अतिशयोक्तिपूर्ण हों।

मेरा अन्तिम वाक्य सुनते ही हाकिम चौंक पड़े और बोले—क्या आप आशा करते हैं कि हम लोग आपकी इस असंभव बात पर विश्वास करें ?

मैंने कहा—जी हां ! मैं पहिले ही कह चुका हूं कि आप लोग पुरानी दुनिया के नरक की कल्पना भी नहीं कर सकते।

हाकिम—पुरानी दुनिया को समझने के बारे में हम लोगों ने मिहनत तो काफी की है। और उस के लिये एक संग्रहालय भी बना रक्खा है, फिर भी ऐसी कल्पना करना कठिन ही था। समाचारपत्रों के पतन की ऐसी कल्पना हम लोग नहीं कर सकते। खैर !

इसके बाद जो मुकद्दमा आया उसका विषय यह था कि एक यात्री रेलगाड़ी से उतरकर सार्वजनिक भोजनालय में आया। उस समय रात्रि के दस बज गये थे। उसने भोजन मांगा पर मैनेजर ने कहा—अब तो दस बज गये हैं। यात्री ने कहा—

गाड़ी लेट हो गई थी इसलिये मैं इतनी देर से आया। पर मैनेजर ने भोजन न दिया। यात्री भूखा ही सो गया।

हाकिम ने मैनेजर से कहा—माना कि दस बजे भोजनालय का काम बंद कर दिया जाता है, पर यह भूलना न चाहिये कि आपकी नियुक्ति जनता कि सेवा के लिये हुई है, और 'सेवा' मनुष्यता को तिलांजलि देकर नहीं की जा सकती ! जरा खयाल तो करो कि जब शहर के सब लोग बालबच्चों के साथ आराम से सोते होंगे तब एक यात्री आकाश के तारे गिनगिनकर या घड़ी के काँटे देख-देखकर रात गुजार रहा होगा। और इसमें उसका अपराध सिर्फ इतना है कि वह हमारे निर्दय और लापर्वाह शहर में यात्री बनकर आया है। क्या इस प्रकार आपने अपनी लापर्वाही से सारे शहर को लजाया नहीं है ! ओह ! यह कितने शर्म की बात है कि हमारे शहर में एक यात्री को पूरी रात भूखे रहकर निकालना पड़ती है !

मैनेजर ने सिर नीचा कर लिया, उसकी आखें भर आई और उसने यात्री से माफी माँगते हुए हाकिम से कहा—मुझे अपनी लापर्वाही पर सख्त अफसोस है, आप जो उचित समझें इसका प्रायश्चित मुझे बता दीजिये।

हाकिम—प्रायश्चित्त तो यात्री महोदय ही बता सकते हैं।

यात्री—अब इस घटना के बारे में मेरे मन में कोई खेद नहीं है, इसलिये मैनेजरजी को क्षमा किया जाय।

मैनेजर—इस क्षमा के लिये मैं यात्री महोदय को धन्यवाद देता हूं ! फिर भी मुझे अपराध का ऋण तो चुकाना ही चाहिये,

आत्मरक्षा की दृष्टि से भी यह जरूरी है।'

हाकिम—कैसी आत्मरक्षा?

मैनेजर—आज सवेरे के कई पत्रों में इस दुर्घटना की चर्चा है, बड़े बड़े शीर्षक दिये गये हैं—'भोजनालय के मैनेजर की निर्दयता, यात्री रात्रि भर भूखा, शहर का घोर अपमान'। मेरे लिये शहर में मुंह दिखाना भी कठिन हो गया है। अब बिना प्रायश्चित किये मैं मुंह कैसे दिखा सकूंगा?

हाकिम—अच्छा तो आप प्रायश्चित के रूप में तीन दिन तक शाम का भोजन बंद रखिये। अथवा आप अपनी इच्छा के अनुसार जैसा उचित समझें—प्रायश्चित ले लीजिये।

मैनेजर—तीन दिन काफी न होंगे, मैं पंद्रह दिन तक शाम का भोजन बन्द रक्खूंगा।

शाम का समय हो गया था। इसलिये कचहरी का काम समाप्त हुआ। और मैं घर की तरफ लौटा। रास्ते भर आंसुओं को रोकने की चेष्टा करता रहा। कौन जाने ये आंसू पुरानी दुनिया की याद से होनेवाली वेदना के थे, या नई दुनिया के दर्शन से होनेवाले हर्ष के।

५ कुटुम्ब जन्मोत्सव में

सवेरे मैं सोकर उठा ही था कि सुशीलादेवी ने आकर कहा—'मित्रजी! आज तो अपना निमन्त्रण है अपने एक मित्र के घर कुटुम्ब-जन्मोत्सव होनेवाला है। आप को वहां चलने में कोई एतराज तो नहीं है? लीजिये! यह आप के नाम का निमन्त्रण

पत्र है।' यह कहकर उनने पत्र टेबुल पर रख दिया। मैंने बिना पढ़े ही स्वीकारता देदी।

उत्सव में शामिल होने के लिये जब हम लोग गाड़ी में बैठे तब मैंने सुशीलादेवी से कहा—इस उत्सव का कुछ मतलब, तो समझाइये।

सुशीलादेवी ने कहा—जब तीसरी सन्तान विवाह के बाद एक वर्ष माता-पिता के पास घर रह लेती है तब उस पुत्र-पुत्रा, पुत्री-पुत्रे का घर अलग बसाने के लिये उन्हें उत्सव-पूर्वक बिदाई दी जाती है, इसे ही कुटुम्ब जन्मोत्सव कहते हैं।

मैं—आपके इस पुत्र-पुत्रा और पुत्री-पुत्रे का मतलब तो मैं नहीं समझा।

सुशीला देवी—पुत्र की प्रमित्रा को पुत्रा कहते हैं और पुत्री के प्रमित्र को पुत्रे। पुत्र के माता-पिता के घर में पुत्र पुत्रा का जोड़ा है और पुत्री के माता-पिता के घर में पुत्री-पुत्रे का जोड़ा। आज जिस घर में अपन चल रहे हैं उसमें पुत्र-पुत्रा का जोड़ा बिदा किया जायगा।

मैं—क्या तीसरी सन्तान का ही कुटुम्ब जन्मोत्सव किया जाता है? पहिली दूसरी का नहीं?

सुशीला—नहीं, पहिली सन्तान तो विवाह के बाद जीवन भर माता पिता के पास ही रहती है और दूसरी सन्तान को अपने साथी के घर जाना पड़ता है। इस प्रकार दो सन्तानों का तो कुटुम्ब-जन्मोत्सव होने का अवसर ही नहीं है। किसी किसी घर में तीसरी का अवसर आता है।

मैं–पर अगर पहिली सन्तान लड़की हो और दूसरी सन्तान लड़का, तो क्या लड़की घर में रहेगी और लड़का दूसरे के घर जायगा ?

सुशीला–क्यों न जायगा ? लड़की या लड़का होने से कौटुम्बिक सम्बन्धों में या उत्तराधिकारित्व आदि में कोई बाधा नहीं आती।

मैं–पर मान लीजिये—वर भी अपने माता-पिता की पहिली सन्तान है और वधू भी अपने मातापिता की पहिली सन्तान है। तो कौन किस के यहा जायगा ?

सुशीला–ऐसे समक्रमिक सम्बन्ध प्रायः नहीं किये जाते। अगर कुछ कारणों से ऐसे सम्बन्ध हो ही जायँ तो जिसकी उम्र ज्यादः हो उसके यहा उसके दूसरे साथी को जाना पड़ता है। अथवा अपनी अपनी सुविधा के अनुसार दोनों पक्ष तय कर लेते हैं। यह तो मैंने आप से साधारण नीति कही, आवश्यकतानुसार इसके अपवाद बनते रहते हैं। कुटुम्बों में विशेष आर्थिक विषमता न होने से और अर्थोपार्जन के सूत्र नारी के हाथ में भी होने से इस बारे में कोई झगड़ा नहीं होता।

इतने में वह घर आ गया जहां हमें जाना था। हम लोग गये। मेरा भी काफी आदर किया गया। उत्सव देखकर काफी प्रसन्नता हुई। मकान यह भी वैसा ही था जैसा मेरे मित्र का था। हां, एक कमरा ऐसा था जिसमें कुछ मशीनें रक्खी हुई थीं। मैंने सुशीलादेवी से पूछा—घर में ये मशीनें क्यों हैं ?

उनने कहा— हम लोग इस बात की कोशिश करते हैं कि कारखानों में जाकर लोगों को काम न करना पड़े, इसलिये ऐसी मशीनें बनाई गई हैं जो घर में रहती हैं और कुटुम्बी लोग फुर्सत से उन्हें चलाकर माल तैयार करते हैं। इतना अवश्य है कि कारखाने में जाकर आदमी को ६॥ घण्टे काम करना पड़ता है जब कि घर में ७॥ घण्टे काम करना पड़ता है। पर घर में लगातार काम नहीं करना पड़ता, इसलिये लोग घर में काम करना पसंद करते हैं। देश के बड़े बड़े उद्योग इसी तरह घर घर में बटे हुए हैं। इसे के अन्त में माल बटोरकर बड़े कारखानों में पहुँचा दिया जाता है। वहां छोटे छोटे हिस्सों को मिलाकर बड़ी चीज तैयार कर ली जाती है। कारखानों के भीतर जाकर बहुत कम आदमियों को काम करना पड़ता है।

मैं—आप लोगों ने यंत्रवाद का विष पूरी तरह हर लिया है !

सुशीला—हां, कोशिश तो ऐसी ही की है।

मैं— चलिए, तो अब घर चला जाय !

सुशीला— घर तो आज कुछ काम नहीं है। कहिये तो शहर ही आपको घुमा दूँ!

मैं— नेकी और पूछ-पूछ !

हम सब मिलकर हवाई-जहाज के स्टेशन पर पहुँचे। खूब विशाल मैदान था। हवाई-जहाज काफी विचित्र थे। वे आसमान में जहां चाहे खड़े रह जाते थे, और तीर की तरह सीधे उतरते और चढ़ते थे। रेल के डब्बों के समान उनमें सुविधा

हो गई थी। बैठने आदि की जगह ऐसी बना दी गई थी कि उनमें बाहर की हवा का प्रभाव न पड़ता था। वे समशीतोष्ण ही रहते थे। इस बात में भी वे रेल के डब्बों के समान ही थे।

मैंने सुशीलादेवी से कहा—मेरी इच्छा है कि आसमान में जाऊँ और किसी स्थिर वायुयान में बैठने का अनुभव लूँ।

सुशीलादेवी ने वहां के एक मैनेजर से मेरा परिचय कराया और मेरी इच्छा जाहिर की। उसने तुरंत ही बड़ी नम्रता के साथ मेरी इच्छा पूर्ण कर दी। आसमान में जब मैंने चारों तरफ नजर दौड़ाई तब मुझे दूर पर एक मैदान दिखाई दिया। मैंने सुशीलादेवी से पूछा—वह कौनसा मैदान है ?

सुशीलादेवी ने कहा—वह अन्तर्ग्रहीय है। वह मंगल आदि ग्रहों से आनेवाले यानों का स्टेशन है।

मेरे ताज्जुब का ठिकाना न रहा। मैंने कहा—दूसरे ग्रहों से संबंध कैसे स्थापित हुआ ?

सुशीला—पहिले तो बातचीत हुई, फिर आने-जाने की शुरुवात हो गई।

मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया! मैंने कहा—उनके संकेतों और भाषाओं को आखिर आप लोगों ने समझा कैसे होगा ?

सुशीला—इसका श्रेय मंगल ग्रह-वालों को ही देना होगा। शुरू शुरू में मंगलग्रह से ही एक राकेट पृथ्वी पर गिरा था जिस में एक फिल्म रक्खी थी। जब उस फिल्म को पर्दे पर दिखाया गया तब उस में पहिले तो हरएक अक्षर की आवाज और उसकी आकृति दिखाई दी। फिर हरएक शब्द की आवाज और लिखावट

के साथ उस शब्द की क्रिया या वह चीज दिखाई दी। इस प्रकार यहां के लोगों ने वहां की लिपि और भाषा का ज्ञान किया। इसके बाद और भी राकेट गिरे, उनमें मंगल की भाषा में वहां की सब बातें लिखीं थीं। कुछ दिन बाद यहां से भी सन्देश जाने लगे और आज इस बात में काफी तरक्की हो गई है।

मैंने कहा- नई दुनिया अर्थात् देवों की दुनिया। यहां विज्ञान और संयम चरमसीमा पर पहुँचे हैं। मैं यह सोच ही रहा था कि कुछ दूरी पर हवाई जहाजों से आदमी कूदते हुए दिखाई दिये। मैंने पूछा—यह क्या हो रहा है।

सुशीला देवी ने कहा- कुछ लड़के लड़कियाँ आसमान से कूदने का अभ्यास कर रहे हैं।

अन्त में हम लोग वायुयान से उतरे और घर आ गये।

(६) दिनचर्या

शाम को हम लोग भोजन करने बैठे थे। मैंने मित्रजी से कहा—मेरे आने से आप लोगों को कष्ट तो काफी हुआ है यहां तक कि आपकी दिनचर्या भी बदल गई।

मित्र बोले—दिनचर्या में थोड़ा-बहुत फर्क हो जाय तो भी हमें कष्ट नहीं होता, नींद में कमी न रहना चाहिये। सो आप जानते ही हैं कि हम लोग नियमानुसार साढ़े-नव बजे शयनागार में चले जाते हैं और छः बजे निकलते हैं।

मैं- क्या नई दुनिया में नींद के समय का भी नियम बना हुआ है।

मित्र—अवश्य! दस से छः।

मैं—क्या सभी लोग दस बजे अवश्य सो जाते हैं ?

मित्र—साधारण नियम तो यही है, फिर भी दिनचर्या के अनुसार उसमें कुछ परिवर्तन होता है। जीविका की दृष्टि से पाँच तरह की दिनचर्या बनती है या यों कहना चाहिये कि जनता का बहुत बड़ा भाग दिनचर्या की दृष्टि से पाच भागों में बटा हुआ है।

मैं—आपका घर किस विभाग में है ?

मित्र—मध्यान्ह विभाग में। हम लोग सुबह छः बजे उठते हैं। साढ़े सात बजे तक शौच, मुखमार्जन, सफाई, व्यायाम और दुग्धपान से निवृत्त हो जाते हैं। साढ़े-सात से साढ़े-आठ तक रेडियो सुनते हैं या समाचार-पत्र पढ़ते हैं। साढ़े-आठ से नव तक स्नान, नव से दस तक भोजनादि। दस से साढ़े-दस तक मनोरंजक साहित्य पढ़ना, चिट्ठीपत्री करना या और इच्छानुसार कार्य। साढ़े-दस बजे निकलकर ग्यारह बजे काम पर हाजिर हो जाना और साढ़े-पाच तक काम करना। वहां से आकर सात बजे तक भोजन। नव साढ़े-नव बजे तक घूमना, गपशप, रेडियो, मिलना-जुलना, कोई खेल खेलना या इच्छानुसार कोई कार्य करना। साढे-नव बजे शयनागार में चले जाते हैं और साढ़े-दस बजे सो जाते हैं। अगर सिनेमा आदि जाना हुआ तो साढे सात बजे से दस तक सिनेमा देखते हैं। छुट्टी के दिन दिन-चर्या कुछ बदल जाती है।

मैं– दिनचर्या तो बहुत सुन्दर है। पुरानी दुनिया के साम्राज्यवादी और पूंजीवादी बडे बड़े श्रीमानों को भी ऐसी निश्चिन्तता और ऐसा आराम मुश्किल है। अगर वे अपने पाप छोड़कर नई दुनिया के निर्माण में लग जायँ तो वे पूंजीवादी आज

की अपेक्षा काफी सुखी रहें और सारी दुनिया को तो स्वर्ग ही मिल जाय। खैर! अब यह बतलाइये कि दूसरे विभागों की दिनचर्या कैसी रहती है?

मित्र--दूसरे भी इसी प्रकार सुविधानुसार बना लेते हैं। जो लोग घर में ही काम करते हैं उनकी दिनचर्या भी ऐसी ही रहती है। वे लोग प्रायः दस से छः तक काम करते हैं और बीच में आधा घंटा विश्राम करते हैं। हां! कारखाने तेरह घंटे काम करते हैं--नव बजे सबेरे से दस बजे रात तक। सबेरे काम पर जानेवाले जल्दी सो जाते हैं और पांच या साढ़े चार बजे उठकर साढ़े-आठ बजे घर से निकलकर काम पर हाजिर हो जाते हैं। और साढे तीन बजे छुट्टी पा जाते हैं। ऐसे लोगों के लिये सिनेमा आदि के खेल साढे चार बजे शुरु होकर सात बजे समाप्त हो जाते हैं। जो लोग शाम को काम करते हैं वे सबेरे देर से भोजन करते हैं और शाम का भोजन रात को करते हैं। देर से सोते हैं और देर से उठते हैं। पाँचवा दल उन लोगों का है जिनका समय बदलता रहता है जैसे रेल के कर्मचारी आदि। भोजन-शाला आदि में काम करने-वालों की दिनचर्या भी कुछ बदली रहती है, फिर भी जीविका का कार्य साढ़े-सात घंटे से ज्यादः किसी को नहीं करना पडता। वह भी घर में, बाहर सिर्फ साढ़े-छः घंटा।

मैंने कहा--- नई दुनिया में लोग इतने आराम से रहते हैं फिर भी उनने इतना वैभव इकट्ठा किया है; जबकि पुरानी दुनिया में लोग दिन-रात काम में जुटे रहते हैं, पर न तो भरपेट

भोजन पाते हैं — न रहने के लायक जगह।

मित्र— अपने अपने स्वार्थ पर संकुचित दृष्टि, अहंकार, और इनसे पैदा होनेवाली मूर्खता से ऐसा ही होता है।

मैंने कहा— ठीक कहा आपने।

(७) साधु-दर्शन

सुबह जल्दी नींद खुल जाने पर भी मैं बिस्तर पर पड़ा हुआ था, क्योंकि छः बजने पर ही मित्र वगैरह शयनागार से निकलते थे; किन्तु बाहर मुझे सुशीलादेवी की आवाज सुनाई दी, ऐसा मालूम हुआ कि उठकर वे किसी काम में लग गई हैं। मैं भी उठा और कमरे के बाहर आ गया। उनने मुझे देखकर कहा— अच्छा! आप खुद ही जाग गये। दस मिनिट बाद मैं आपको जगाने-वाली ही थी। आज साधुजी के दर्शन को जाना है।

मैंने चौंककर कहा— साधुजी! क्या साधुओं से भी नये संसार का पिंड नहीं छूट पाया है?

सुशीलादेवी ने हँसकर कहा— तब तो कल आप इस बात पर भी आश्चर्य करेंगे कि नये संसार वालों का पिंड मां-बाप से भी नहीं छूट पाया है!

मैंने कहा— पुराने संसार में तो साधुओं के बोझ के मारे जनता कराह रही है। अंधश्रद्धा, लूटखसोट, छलकपट और हराम-खोरी उनमें कूट-कूटकर भरी है, फूट और दलबन्दी में भी उनका बहुत-सा स्थान है। उनकी तुलना क्या मां-बाप से की जा सकती है?

सुशीला देवी— पर नये संसार में साधु का वही स्थान है जो घर में माँ का होता है।

मैं— तब तो आपकी बड़ी कृपा होगी कि मुझे ऐसे साधु के दर्शन करा देंगी।

सुशीला— हाँ, उसी के लिये तो आज जल्दी उठी हूँ।

उस दिन हम लोग शारीरिक-कृत्यों से निबटकर छः बजे घर से निकल दिये और थोड़ी ही देर में साधु-मंदिर पहुँच गये। साधु-मंदिर मेरे मित्र के मकान से कुछ ही बड़ा था। मकान में प्रवेश करते ही एक महिला के दर्शन हुए। उन ने दूर से ही देखकर कहा— सुशीला बेटी! तुम तो अब की बार बहुत दिनों में आई, कुशल तो है?

"आप के चरणों की कृपा से कुशल है माता जी" यह कहकर सुशीला देवी ने घुटने से भी नीचे तक लटकने वाले अपने लहराते हुए बालों को हाथ में लेकर और घुटने टेककर माता जी के चरण पोंछे और दोनों पैरों का चुम्बन लिया।

मैं तो शिष्टाचार का यह रूप देखकर दंग ही रह गया। जिस जगत में लोग न्यायाधीश और प्रान्त नायक आदि को भी सलाम नहीं करते उस जगत में विनय के इस रूप की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। सुशीला देवी के बाद मित्र जी ने भी माता जी के चरणों पर सिर रगड़ कर चुम्बन लिया, बच्चों ने भी यही किया। अब मुझसे भी न रहा गया मैंने भी मित्र का अनुकरण किया।

सुशीला देवी ने पूछा—पिताजी कहां हैं?

माता जी—आते ही हैं स्नान आदि कर रहे हैं।

सुशीला देवी—अभी कोई दूसरे लोग तो आये नहीं माताजी ?

माता जी—नहीं बेटी, आज तो तू ही सब से पहिले आ गई है।

'तो ऊपर जाती हूं' यह कहकर सुशीलादेवी ऊपर चली गईं। और मेरे मित्र झाडू लेकर नीचे का कमरा साफ करने लगे। इतने में कुछ दूसरे लोग आगये उनने भी माता जी का ऐसा ही विनय किया और वे लोग भी झाड़ने-बुहारने की सेवा करने लगे। एक भाई ने मेरे मित्र के हाथ से झाडू छीन लिया और बोले—भाई जी, थोड़ा पुण्य मुझे भी लूटने दो। साफ-सफाई हो ही पाई थी कि साधु जी आगये। सुशीला देवी भी ऊपर साफसफाई करके नीचे आगईं। सब ने साधु जी को उसी तरह प्रणाम किया जिस तरह साध्वी जी को किया था। और लोग तो चले गये पर हम लोग साधु साध्वी जी के आगे बैठ गये।

साधुजी ने कहा—अब की बार तो तुम लोग बहुत दिन में आये।

सुशीलादेवी कुछ कहें, इसके पहिले ही मैंने कहा—मैं सुशीला जी के यहां मिहमान हूं मेरी व्यवस्था करने में और शहर घुमाने में ही इनका बहुत-सा समय निकल जाता है। इस प्रकार मैं ही आप सरीखे साधु महात्माओं के दर्शनों में अन्तराय बन गया हूं।

साधु जी ने हँसते हुए कहा—साधु के दर्शन की अपेक्षा साधुता का पाना तो और भी अच्छा है।

मैंने पूछा—इसमें साधुता का पाना क्या हुआ ?

साधुजी—दूसरों की सेवा करना ही तो साधुता का जोर है। तुम्हारी व्यवस्था करके इस कुटुम्ब ने यही तो किया है।

इतने में मित्र ने कहा—पर इन्हें तो साधुओं से बड़ी चिढ़ है।

साधु जी कुछ कहें, इसके पहिले ही मैंने कहा—पुरानी दुनिया में साधु कहलाने वाले अधिकांश लोग जैसे होते हैं उनसे घृणा ही की जा सकती है। और नई दुनिया के साधु के बारे में तो मैं आज से पहिले कुछ जानता ही न था।

साधुजी—पुरानी दुनिया में साधु जिस उद्देश को लेकर बनाये गये थे उसी उद्देश को लेकर नई दुनिया में साधु बनाये गये हैं। पर बात यह हुई कि जनता की लापर्वाही रूढ़िपूजा पूंजीवादी आदि से साधुवेषियों की भरमार हो गई और साधु-वेष एक व्यवसाय बन गया, इसलिये तुम सरीखे विचारकों की दृष्टि में उससे घृणा होना स्वाभाविक है, पर नई दुनिया में यह बात नहीं है। यहां कोई आदमी स्वेच्छा से साधु नहीं कहला सकता। यहां तो सारे राष्ट्र की या बड़े प्रान्त की धारासभा किसी को साधुरूप में स्वीकार करे, वही साधु कहला सकता है।

हमारी ये बातें हो ही रही थीं कि एक देवी ने आकर कहा—गुरुजी, बाहर प्रान्तीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश खड़े हैं और आप से मिलना चाहते हैं।

साधुजी ने कहा—इन मिहमानजी से बातचीत हो जाय फिर उन्हें भीतर आने के लिये कह देना।

मैंने कहा—मेरी तो कोई खास बातचीत नहीं है मैं तो सिर्फ आपके दर्शन के लिये आया था सो हो गया। बाकी बातें तो मैं

अपने मित्र दंपति से जान लूंगा आप न्यायाधीश महोदय को बुलायें।

न्यायाधीश आकर मेरी बगल में बैठ गये वे न्याय के मामले में कोई गहरी सलाह लेने आये थे। ऐसे अवसर पर मेरा उपस्थित रहना शायद ठीक न होता इसलिये मैंने उन्हें प्रणाम किया और खड़ा हो गया, मेरे मित्र भी खड़े हो गये और प्रणाम करके सब ने विदा ली।

रास्ते में मैंने मित्र से कहा—ऐसे विद्वान त्यागी और वत्सल साधुओं की तो सब जगह और सब समय जरूरत रहेगी। प्रान्तीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तक जिनसे सलाह लेने आते हैं उनकी विद्वत्ता का क्या कहना! और फिर ऐसी सादगी। पर मित्रजी, इन साधुजी के बारे में कुछ विशेष तो बतलाइये।

मित्र—साधुजी धर्मशास्त्र समाजशास्त्र इतिहास दर्शन कानून अर्थशास्त्र तथा शासन-पद्धति के प्रकांड विद्वान हैं। पच्चीस वर्ष की उम्र में ही आप विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियत हुए थे। दस वर्ष बाद आप विश्वविद्यालय के कुलगुरु हो गये। और पन्द्रह वर्ष तक आप इसी पद पर काम करते रहे। हम लोगों की अपेक्षा आप को छः गुना वेतन मिलता था। लेकिन पचास वर्ष की उम्र में आपने साधु दीक्षा ले ली। अब आप सिर्फ इतना ही लेते हैं जितना मुझे मिलता है। और बीस-पच्चीस वर्ष में जो पुस्तकें तथा और सम्पत्ति आपके पास इकट्ठी हो गई थी वह भी आप ने समाज को अर्पित कर दी है। अब आपका काम लिखना पढ़ना, लोगों को सलाह देना और हर तरह लोगों के काम आना है। प्रान्तनायक या राष्ट्र-नायक से लेकर साधारण मजदूर तक के

लिये आपका द्वार खुला है। माता जी भी उसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका थीं, आप भी अपने प्रमित्रजी के साथ साध्वी हो गई। इन दोनों का जनता पर बड़ा प्रभाव है।

मैं–पर इनके छोटे मोटे काम के लिये कोई सेवक है कि नहीं ?

आवश्यकता पर नियत सेवक मिल सकता है पर इमने स्वीकार नहीं किया। ये अपना काम खुद ही कर लेते हैं अथवा सुबह शाम दुपहर को जो लोग मिलने के लिये आते हैं वे सेवा कर देते हैं। देखा नहीं आपने, सुशीलादेवी माताजी से पूछकर तुरन्त ऊपर चली गई थीं और ऊपर के कमरे साफ कर आई थीं और नीचे हम लोगों ने सफाई कर दी थी। प्रतिदिन ऐसे सेवक आते ही रहते हैं जो स्वेच्छा से सेवा कर जाते हैं।

मैं—पर आप लोग भेंट-पूजा कुछ नहीं ले जाते ?

मित्र—नहीं, वे भेंट-पूजा स्वीकार नहीं करते। वे कम से कम खर्च करते हैं और वह तो उन्हें सरकार से मिल ही जाता है। बल्कि उनकी मितव्ययिता के कारण कुछ बच ही जाता है जो कभी कभी हम लोगों को प्रसाद-रूप में मिल जाता है।

मैं—क्या साधुजी घर के बाहर कभी नहीं निकलते ?

मित्र—हर दिन निकलते हैं। सुबह या शाम कभी कभी घूमने को निकलते हैं। किसी के यहां कोई मर जाय या विशेष बीमार हो जाय तो उसके यहां जाते हैं, पन्द्रह दिन में एकाध बार सिनेमा देखने भी चले जाते हैं। हाँ! फिर भी बहुत कम निकलते हैं।

मैं—आपके घर कभी आये या नहीं ?

मित्र—दो बार आये हैं। एक बार मेरी बीमारी में बिना बुलाये आये थे। एक बार सुशीलादेवी के सत्याग्रह से पराजित होकर भोजन करने आये थे।

मैंने जरा हँसकर पूछा—कैसा सत्याग्रह ?

मित्र—एकबार हम लोगों में खूब मनोमालिन्य हो गया.........।

इतना कहकर मित्रजी रुक गये और सुशीलादेवी की तरफ देखकर बोले—कहिये प्रमिलाजी, यह बात कह दी जाय न ? अथवा यह बात आप ही सुनाइये !

सुशीला—आप ही सुनाइये, इसमें संकोच की क्या बात है ? अथवा लाइये, मैं ही सुना देती हूं। देखिये मित्रजी ! जब हम लोगों की शादी हुई तब कुछ दिन तक मुझे ऐसा मालूम होता था कि हम दोनों बैठे बैठे गप्पें मारा करें और हम ऐसा ही किया करते थे। एक दिन प्रमिलजी बाहर गये और उनके कोई मित्र मिल गये, उसमें इन्हें एक घंटे की देर हो गई इसलिये इनके आते ही मैं बहुत नाराज हुई। इनको लगा कि यह तो बड़ी पराधीनता कहलाई इससे ये भी रुष्ट हो गये। इस पर मेरा खेद और बढ़ा कि ये मेरे प्रेम की भी कद्र नहीं करते। रातभर यह मनोमालिन्य बना रहा। और सबेरे उठकर मैं साधुजी के यहां चलने लगी। इनने पूछा और ये भी मेरे साथ हो लिये। माताजी और साधुजी के सामने मैंने यह शिकायत रख दी।

साधुजी ने हँसकर पहिले तो मेरे गाल पर एक मीठी चपत जमाई, फिर कहा—सुशी, तू प्रेम का और मोह का अन्तर नहीं

समझती ! मोह स्वार्थी है, प्रेम परार्थी । तू मोह को प्रेम समझ रही है ।

मैंने कहा—गुरुदेव, क्या मैं अपने प्रमित्रजी से प्रेम नहीं करती ?

गुरुदेव—नहीं, वह मोह है । प्रेम होता तो तू आते ही अपने प्रमित्र पर क्रोध न करती बल्कि चिन्ता के साथ देर होने का कारण पूछती, और अकस्मात् मिलने की बात का पता लगते ही तू क्रोध को भूलकर उस मित्र की चर्चा में रस लेती । जिस बात से तेरा प्रमित्र खुश था या नाखुश नहीं था उस बात से तू भी खुश होती या नाखुश न होती । यह प्रेम का रूप है । पर मोह में तो सिर्फ अपनी आसक्ति-जन्य प्यास बुझाने की चिन्ता होती है—प्रेमपात्र की रुचि-अरुचि स्वतन्त्रता का खयाल नहीं होता ।

गुरुदेव की बात सुनकर पहिले तो मैं ठंडी हो गई, फिर मुझे अपनी गलती महसूस होने लगी । इतने में माता जी ने कहा—

सुशीला बेटी, जीवन एक कला है । ज्यादः स्याही पोतने से ही अच्छा चित्र नहीं बनता, स्याही पोतने में विवेक की जरूरत है । प्रेम का प्रदर्शन भी विवेक के साथ करना चाहिये । यहां तक नौबत न आने देना चाहिये कि प्रेम से पराधीनता का अनुभव होकर विरागता की प्रतिक्रिया होने लगे ।

अब मैं सोलह आना अपनी गलती समझ रही थी । मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि इतने में प्रमित्रजी ने कहा—गुरुदेव, आपकी दिव्यदृष्टि में इस मामले में सुशीलादेवी की भूल होगी पर सुशीलादेवी की भावना को न समझ कर मैंने भी बड़ी गलती की है । सचमुच मुझसे प्रेम की अवहेलना का पाप हुआ है ।

गुरुदेव ने हँसते हुए कहा—चलो, अब अपनी भूल समझ जाओ—इससे तुम दोनों के पाप धुल जायँगे।

इस खुशी के उपलक्ष्य में मैंने गुरुदेव से कहा—गुरुदेव, आज आपको और माताजी को हमारे घर चलना होगा और वहीं भोजन करना होगा।

गुरुदेव ने हँसकर इनकार कर दिया और मैंने सत्याग्रह ठान दिया। मैं वहीं जमीन पर पालथी मारकर बैठ गई। गुरुदेव और माताजी ने मुझे बहुत समझाया, पर मैंने तबतक उत्तर भी न दिया जब तक उनने घर आना मंजूर न किया। करीब आध घंटे में बाल-हठ की विजय हुई।

सुशीलादेवी की बातें सुनकर मैंने गहरी साँस ली। फिर कहा—वात्सल्य और भक्ति भी आनन्द के बड़े सुन्दर रूप हैं। मैं सोचता था नये संसार में शायद इनको जगह न होगी, पर देखता हूं इनका भी आनन्द यहां उछल रहा है। और ऐसे साधुओं को धन्य है जो इतने विशाल ज्ञान के भंडार होने पर भी साधारण लोगों के जीवन की समस्याओं को सुलझाने में इतना ध्यान देते हैं। पुराने संसार में साधु लोग प्रायः वे ही होते हैं जो मूर्खता और दंभ के अवतार हैं। अगर कुछ पढ़े-लिखे विद्वान भी हुए तो इसी अकड़ में रहते हैं कि हमें किसी से क्या मतलब ! जिस दुनिया को उनकी सेवा की जरूरत है—उसी से उन्हें कोई मतलब नहीं, और जिस कल्पित ईश्वर आदि को उनकी सेवा की जरूरत नहीं—उसी की सेवा का दम भरते हैं। ऐसे मुफ्तखोर कृतघ्न और लापर्वाह लोग ही पुराने संसार में बड़े साधु कहलाते हैं !

मित्र—पर नये संसार में तो साधु नीचे से ऊपर तक सब जगह समाज-सेवा में लगे रहते हैं और वे नये संसार के आधार स्तम्भ हैं। नई दुनिया में आप आध्यात्मिकता और भौतिकता का जो विकास देख रहे हैं वह सब ऐसे ही साधुओं की बदौलत। बड़े बड़े आविष्कार ऐसे ही साधुओं ने किये हैं, प्रयोगों में प्राण तक दिये हैं। आज शासक लोग प्रजा के पूरे सेवक हैं इसमें बहुत बड़ा हिस्सा इन साधुओं का है। लोगों को ईमानदार बनाने में इनका बड़ा हाथ है। चुनाव का सारा प्रबन्ध इन्हीं के हाथ में रहता है। अधिकार इनके हाथ में कुछ नहीं है, पर सरकार और जनता में इनके शब्दों का मूल्य अधिक से अधिक है। ज्ञान, निस्पृहता और सेवा ही इनका बड़ा से बड़ा धन और अधिकार है।

मैं—इनके रहते रहते न तो समाज में कोई गड़बड़ी हो सकती है, न शासक लोग सत्ता को हथयाकर उच्छृंखल या मालिक बन सकते हैं। आज आप लोगों की कृपा से सच्चे साधु के दर्शन कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

(८) अस्पताल

भोजनादि से निबटकर थोड़ी देर विश्राम कर लेने के बाद सुशीलादेवी ने कहा—आज तो छुट्टी है इसलिये आज हम लोग आपके साथ घूमने चल सकेंगे।

मैंने कहा—इससे बढ़कर कृपा क्या होगी। हालांकि एक से एक बढ़कर कृपा आप मुझपर कर ही रही हैं। सबेरे आपने साधुजी के दर्शन करा ही दिये।

सुशीला—सबेरे तो हम लोग अपने कार्यक्रम में आपको खींच ले गये थे इसमें कोई कृपा की बात न थी। हां! अब जरूर थोड़ी-सी कृपा करने की इच्छा है।

यह कहकर सुशीलादेवी खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

मैंने कहा—शिक्षण-संस्था देखने की इच्छा है। फिर जहां आप उचित समझें वहां ले चलें।

सुशीला—शिक्षण-संस्थाएँ तो आज बन्द हैं। आज आपको अस्पताल ले चलती हूँ वहां का संग्रहालय भी आपको दिखा दूंगी।

इसके बाद सुशीलादेवी ने बच्चों से कहा—बच्चो! आज तुम लोग घर पर ही खेलो, मैं तुम्हारे काका को अस्पताल दिखाने ले जाती हूं। अस्पताल तो तुम लोगों ने देखी है।

मैंने आश्चर्य से देखा कि बच्चे बहुत जल्दी राजी हो गये। मित्र दम्पति के साथ मैं अस्पताल पहुँचा। आलीशान इमारत थी, पर इसका मुझे आश्चर्य न हुआ, पुरानी दुनिया में भी अस्प-तालों की इमारतें शानदार बनाई जाती हैं। मुझे तो भीतरी व्यवस्था देखना थी सो उसे देखकर काफी सन्तोष हुआ। सबसे बड़ी बातें यह कि यहां लाँच-रिश्वत या इनाम का नामनिशान नहीं है। दूसरी बात यह कि रोगियों के साथ बड़े प्रेम से व्यवहार किया जाता है। तीसरी बात यह कि रोगी के अभिभावकों को पूरी सुविधा दी जाती है। अभिभावक रोगी के पास रात-दिन रहना चाहे तो रह सकता है और न रहना चाहे तो भी अस्पताल की तरफ से पूरी देखरेख रक्खी जाती है। अस्पताल में रहनेवाले रोगी से सिर्फ आठ आने रोज लिया जाता है और बाहरसे दवा लेनेवाले

से एक आना। इससे ज्यादा कोई नहीं देता। और न ज्यादा देकर कोई खास रियायत पा सकता है। रोगी की अवस्था देखकर उसको सारी सुविधाएँ बिना किसी विशेष पैसे के दी जाती हैं। रोगियों के मन बहलाने के लिये सिनेमा, खेल, गायन आदि का इन्तजाम किया जाता है। दवाइयों में काफी विकास हुआ है। अब क्लोरोफार्म की दुर्गन्ध कहीं नहीं आती। पर दो बातों की तरफ मेरा ध्यान विशेष रूप में आकर्षित हुआ। एक तो यह कि मैंने गौर से देखा कि हम लोगों को देखकर हरएक रोगी शरमाता था, दूसरी यह कि अस्पताल में रोगी बहुत कम थे। मेरे पूछने पर मित्र जी ने कहा—रोगी का शरमाना स्वाभाविक है। रोगी होना अपने ही किसी असंयम का परिणाम है और असयम से शरमिन्दा होना स्वाभाविक है।

मैं—क्या नये संसार में अधिकतर लोग बीमार नहीं होते?

मित्र—होते हैं चार-छः वर्ष मे एकाध दिन को हलका-सा बुखार या जुखाम हो जाता है पर इसके लिये अस्पताल में आने की जरूरत नहीं होती। दस-पांच साल में हजार में एकाध आदमी ही अस्पताल मे रहने आता है। हां! स्वास्थ्य सम्बन्धी सलाह लेने के लिये लोग कुछ अधिक मात्रा में आते हैं और अस्पतालों का यही मुख्य काम है। एक तरह से आप अस्पतालों को स्वास्थ्य शिक्षण-शाला कह सकते हैं। अस्पताल के चारों तरफ बरामदों में स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम लिखे हुए हैं उनकी पाबन्दी करने पर बीमार होने का कोई कारण नहीं रहता।

मैं—पर कुछ बीमारियाँ माता पिता की तरफ से विरासत में भी तो मिलती हैं।

मित्र—हाँ ! मिलती थीं, पर अब नहीं मिलतीं। शुरु शुरु में जो ऐसे रोगी थे उनको सुई टोंचकर जनन शक्ति से हीन कर दिया गया, जिससे आगे कोई सन्तान न हो। और आज कल भी बीमार आदमी कोई सन्तान पैदा नहीं कर सकता। वह खुद इसे पसन्द नहीं कर सकता।

मैं—तो बीमारों को नपुंसक बना दिया जाता है।

मित्र—नहीं, उससे नरनारी-मिलन में कोई बाधा नहीं होती सिर्फ सन्तान नहीं होती ! तीन सन्तान होने के बाद भी हरएक आदमी को ऐसे प्रयोग करा लेना पड़ते हैं। इसमें कोई बुराई या कष्ट नहीं है।

मैं—तब आजकल बीमारियाँ हैं क्या ?

मित्र—यही बुखार, जुखाम, या कोई विशेष काम करते समय अतिसाहस के कारण चोट लग जाना आदि, बस।

मैं—क्षय, दमा, संग्रहणी, सुजाक, गठिया, हिस्टीरिया, गर्दनतोड़, मिरगी, प्लेग, हैजा, प्रदर, चेचक, कुष्ट आदि बीमारियाँ क्या नहीं होतीं ? क्यों लोग इन्हें नहीं जानते ?

मित्र—डाक्टरी की किताबों में इनका परिचय मिल जायगा, पर साधारण लोगों को इन रोगों के बारे में कुछ अनुभव नहीं।

मैं आश्चर्यचकित होकर मित्र जी का मुँह देखते रह गया। इतने में सुशीलादेवी ने कहा—चलिये, संग्रहालय देख लिया जाय। वहां आप को और भी अच्छी तरह उत्तर मिल जायगा।

मित्रजी ने कहा—हाँ ! यही ठीक है प्रमित्रा जी ने यह ठीक कहा।

हम संग्रहालय में गये। कांच के पारदर्शक ऐसे पुतले वहां रक्खे थे जिनके भीतर शरीर के भीतर की सारी व्यवस्था साफ दिखाई देती थी। खून का दौड़ना, हृदय का कम्पन, आमाशय गर्भाशय आदि की रचना, शरीर की एक एक नस, आदि सब साफ दिखाया गया था। रजवीर्य मिलन के बाद बच्चे की एक एक अवस्था का चित्रण किया गया था। पूरे शरीर के भीतर भी दिखाया गया और उतने अग का अलग नमूना बताकर भी दिखाया गया था। आँख नाक कान आदि सभी अंगों और उपांगों के नमूने भी बड़े सुन्दर ढग से बनाये गये थे। शब्द के टकराने से झिल्ली कैसे हिलती है और मस्तिष्क में उससे कैसी क्रिया होती है, प्रकाश का आँखों पर कैसा प्रभाव पड़ता है आदि दृश्यों को देख कर तो मैं दंग रह गया। इसके बाद किस बीमारी का शरीर पर कैसा असर पड़ता है, विकार कहां किस प्रकार जमा होता है, वह किस प्रकार शरीर को विकृत करता है आदि बातों के नमूने बताये गये थे।

एक जगह नरनारी के पारदर्शक पुतले बनाये गये थे। गर्भाशय में कोई शरीर नर क्यों बनता है और नारी क्यों बनता है इसका रूप बताया गया था। किन तत्त्वों के मिलने से शरीर का विकास नारी के रूप में होता है और किन से पुरुष के रूप में इसका भी चित्रण था। किस प्रकार कभी कभी पुरुष नारीत्व की ओर या नारी पुरुषत्व की ओर झुकने लगती है और अन्त में लिंग-परिवर्तन हो जाता है इसके कई नमूने रक्खे थे। इसके बाद यह बताया गया था कि इंजेक्शन के जरिये किस प्रकार

किसी पुरुष को छः महीने में पूरी तरह नारी और नारी को नर बनाया जा सकता है। इसके प्रयोग किस प्रकार सफल हुए इनका इतिहास भी दिया गया था। गर्भ-परिवर्तन आदि के नमूने भी रक्खे हुए थे। हृदय की गति रुक जाने से मरे हुए आदमियों को किस प्रकार विद्युत्सचार द्वारा जिलाया जा सकता है और वह वर्षों से जीता है इसका भी प्रयोग अनेक नमूनों में बतलाया गया था। इस के बाद थे मस्तिष्क के नमूने। एक आदमी भीरु है असंयमी है स्वार्थी है तो उसके मस्तिष्क की रचना कैसी होगी और धीरे धीरे उसकी मस्तिष्क की चिकित्सा करके किस प्रकार उसे निर्दोष मनुष्य बनाया जा सकता है इसके नमूने थे। एक नमूनों ऐसा भी था जिसमें एक आदमी को इंजेक्शन देने के बाद प्रश्न पूछे जा रहे थे। मालूम हुआ इजेक्शन के बाद वह झूठ नहीं बोल सकता। इसके बाद कायाकल्प के नमूने थे। किस प्रकार एक बदसूरत मनुष्य धीरे धीरे सुंदर बनाया जा सकता है इसके नमूने थे। दवाइयों के ऐसे आविष्कार हो गये हैं कि तीन वर्ष के भीतर मनुष्य का रंग बिलकुल बदल जाता है। अब भूमध्यरेखा के ऊपर रहनेवाले मनुष्य भी गौरवदन होते हैं। बेडोल आकृतियाँ इकदम तो नहीं सुधरतीं पर धीरे धीरे बहुत सुधर जाती हैं। बहुत कुछ सुधार तो बच्चे के पैदा होते समय ही कर दिया जाता है।

मैं—देवीजी! जब से नई दुनिया में आया तब से कोई असुन्दर व्यक्ति नहीं दिखाई दिया क्या अब नई दुनिया में असुन्दर या बदरंग व्यक्ति नहीं है?

सुशीलादेवी—नहीं। अब गोरे कुछ पीले कुछ गुलाबी या

गेहुएँ रंग के सुन्दर व्यक्ति हैं। बहुत पतले और बहुत मोटे व्यक्ति भी नहीं हैं। ऊँचाई में कुछ अन्तर जरूर है पर स्त्री हो या पुरुष, अब कोई पांच फुट से छोटा नहीं होता न छः फुट से अधिक ऊँचा, बच्चों की बात अलग है।

मैं—जब शरीर पर आप लोगों ने इतना नियन्त्रण पा लिया है तब समझ में नहीं आता कि लोग मरते कैसे होंगे ?

सुशीलादेवी ने हँसकर कहा—मरते तो हैं क्योंकि मरना जरूरी है, नहीं तो दुनिया में बच्चों को जगह न रहे। हां! मनुष्य इतना ही कर सकता है कि वह अकाल में न मरे, सो अकाल मौत नहीं होती। कभी किसी प्रयोग में कोई वैज्ञानिक मर जाय तो बात दूसरी है नहीं तो साधारणतः अस्सी वर्ष के पहिले कोई नहीं मरता और अस्सी वर्ष में मरना भी एक तरह से अकाल मरण समझा जाता है। क्योंकि असली बुढ़ापा सौ वर्ष से शुरु होता है। और साधारणतः मनुष्य सवासौ वर्ष तक जीवित रहता है कोई डेढसौ तक पहुँच जाता है। और वृद्ध-नगर में तो आपको कुछ व्यक्ति दोसौ वर्ष तक के भी मिलेंगे।

वृद्धनगर कहा है ?

यहा से दो सौ मील। किसी दिन चलेंगे।

जब इतनी लम्बी आयु होती है और अकाल मृत्यु प्रायः नहीं होती तब तीन तीन सन्तति होने पर भी जनसंख्या बढती ही जाती होगी।

सुशीला—हां! बढती तो है फिर भी कुछ कम ही। क्योंकि बहुत से लोग सिर्फ दो ही सतति पैदा करते हैं। अभी इतना खाद्य

पैदा हो जाता है जिससे बढ़ती संख्या की गुजर हो सके पर कुछ दिन बाद हम लोग सिर्फ दो सन्तति पैदा होने का नियम करनेवाले हैं।

मैंने सुशीला देवी को नमस्कार करके कहा—धन्य है आप लोगों को, आप लोग सृष्टि भी हैं और स्रष्टा भी।

सुशीला जी और मित्र जी हँसने लगे।

९ धर्म संग्रहालय

मुझे शहर में कौन कौन से स्थान दिखाना है इसकी एक तालिका सुशीलादेवी ने बना रक्खी थी। उस पर जब मेरी नजर पड़ी तब उसमें धर्मालय का नाम पढ़कर मैं चौंक पड़ा। मैंने कहा—क्यों देवीजी, क्या धर्मालय भी यहां है? पुरानी दुनिया में धर्मों के झगड़े मिटाने के लिये सत्यसमाज ने धर्मालय बनवाये थे क्या वे ये ही धर्मालय हैं।

सुशीला देवी—नहीं, इसे धर्मालय न कहकर धर्मसंग्रहालय कहना चाहिये। वास्तव में इसका नाम भी यही है किन्तु संक्षेप में लोग इसे धर्मालय ही कहते हैं। आप जाकर देख आइये फिर आपको सब मालूम हो जायगा। वहां के मैनेजर आप को सब बता देंगे।

भोजन करके मैं विदा हुआ, और धर्मसंग्रहालय पहुँच गया। जंगली जातियों के धर्मस्थानों और धार्मिक क्रियाओं से लेकर सत्यसमाज के धर्मालयों तक सब तरह के धर्मस्थान उनकी पूजा विधियाँ आदि सब का सजीव चित्रण था। पहिले किस प्रकार लोग भूत-पिशाचों यक्षों आदि की पूजा करते थे, उन्हें खुश करने के लिये

किस प्रकार बलिदान किये जाते थे, यज्ञों के नामपर कैसे हिंसाकांड होते थे, फिर कैसे राम कृष्ण महावीर बुद्ध ईसा आदि के मन्दिर बने, कैसे मस्जिदें बनी, मसजिद भी किस प्रकार एक तरह की मूर्तिपूजा होगई, धर्मस्थान किस प्रकार आपस मे लड़ाने के स्थान, मुफ्तखोर पंडो के रोटी कमाने के स्थान, श्रीमानों और इतर दम्भियों के भी कैसे पाप छिपाने के स्थान बने, इनका इतिहास भी चित्रित था। फिर अन्त में धर्मालय था जिस में दुनिया के सभी महात्माओ के चाहे वे आस्तिक रहे हों या नास्तिक, चित्र मूर्ति सन्देश आदि थे।

मैंने कहा-सत्यसमाज के धर्मालय या अन्य मन्दिर मसजिद आदि अन्यत्र हैं कि कहीं ?

मैनेजर—नहीं, अब कहीं नहीं हैं। बहुत से मन्दिर मसजिद तो धीरे धीरे सत्यसमाज के धर्मालय बन गये थे। कुछ रह गये थे वे भी अब नहीं हैं। पुराने संसार मे जब नया संसार बना तभी सार्वदेशिक सत्यसमाज सम्मेलन ने यह प्रस्ताव किया कि—सत्यसमाज प्रवर्तक की मंशा नया सम्प्रदाय स्थापन करने की नहीं थी किन्तु धर्मों के झगड़े मिटाकर उन मे समभाव पैदा करने की थी पर अब धार्मिक झगड़े रह नहीं गये हैं न इसके लिये धर्मालयों की कोई जरूरत नहीं है, इसलिये धर्मालय बन्द कर दिये जायँ। इन की सम्पत्ति शिक्षण आदि के काम मे लगा दी जाय।' सार्वदेशिक के इस प्रस्ताव के बाद धर्मालय हटा दिये गये। इसके बाद मन्दिर मसजिद भी उठ गये। न उठते तो करते क्या ? क्योंकि न तो कोई पूजा करने को तैयार था न कोई पुजारी बनने को।

मैं—फिर भी धर्मालय तो रहने ही देना चाहिये थे ! पुराने

तीर्थंकर पैगम्बर अवतार आदि से कुछ सीखने का तो था ही। उनके शास्त्र आखिर मनुष्य के लिये पथ-प्रदर्शक का काम दे सकते थे।

मैनेजर—उन लोगों ने मानव समाज की जो सेवा की थी उनको भुलाया नहीं गया है उस युग को ध्यान में रखकर हम उनकी तारीफ भी करते हैं फिर भी उनका जीवन या उनका शास्त्र आज पथप्रदर्शन के काम में नहीं आ सकता। वह तो नया संसार बनने के बहुत पहिले ही बेकार सा हो गया था। राम बहुत भले आदमी थे। प्रजा के सच्चे सेवक और त्यागी थे। फिर भी कुछ अंशों में उन्हें प्रजा के सेवक होने के साथ ब्राह्मणों के गुलाम तक बनना पड़ा था। इसलिये वे एक तपस्वी शूद्र की गर्दन काटने गये, दिग्विजयी सम्राट् बनने के लिये यज्ञ किया। आज तो यह सब पैशाचिकता समझी जायगी पर पुरानी दुनिया में भी यह बात समय-बाह्य हो चुकी थी। कृष्ण का खाडव दाह आदि कोई तारीफ की बात नहीं है। इनमें संकुचित जातीयता की बू आती है। आज का युग तो इसे अणुभर भी सह नहीं सकता। मुहम्मद बहुत सज्जन थे त्यागी थे, उनने एक पुरुष को चार स्त्री रखने का जो विधान बनाया था वह पुराने विधानों की अपेक्षा बहुत अच्छा था। पर आज के लिये तो वह महापाप है। आज का युग इस बात को कैसे सहन करेगा कि 'खुदा ने स्त्री को पुरुष से हलके दर्जे का बनाया' बुद्ध और महावीर का यह विधान भी कैसे मानेगा कि सौ वर्ष की दीक्षित आर्या को भी आज के दीक्षित साधु की वन्दना करना चाहिये। भाई साहब,

एक नहीं सब धर्म अपने जमाने के लिये भले थे पर कुछ शताब्दियों में ही वे बेकार हो गये। सत्यसमाज ने तो सिर्फ इसी-लिये सब का आदर किया था कि एक धर्म वाला जो अपने धर्म को सब से अच्छा और दूसरे धर्म को बहुत खराब समझता था यह मूढ़ता या शैतानियत चली जाय। और सब धर्मों को समान समझने पर उनके विरोधों को देखकर समन्वय करने में विवेक जग पड़े और इस प्रकार लोग समझ जायँ कि धर्म तो सामयिक क्रान्तियाँ हैं। फिर भी वे समाज की पूर्ण क्रान्तियाँ नहीं हैं।

मैं—धर्मों ने तो ऐहिक और पारलौकिक सभी तरह की क्रान्ति की है फिर उसे आप पूर्ण क्रान्ति क्यों नहीं मानते?

मैनेजर हँसे फिर बोले—इसका उत्तर कुछ तो मैं दे चुका हूं। पुराने धर्म अगर सर्वांगीण क्रान्ति होते तो वे बहुपत्नीत्व के समर्थक या उस पर पूर्ण उपेक्षा करनेवाले न होते, उन में सम्राटों और राजाओं की तारीफ न होती न साम्राज्यवाद को उत्तेजन और पूंजीवाद का समर्थन होता। किसी राजा की आयुध शाला में बड़ा चक्र आया इसलिये उसे छः खंड विजय करना ही चाहिये, सम्राटों को छियानवे आठ हजार, चौंसठ हजार, सोलह हजार या हजार रानियाँ होना ही चाहिये, उसे दिग्विजय के लिये घोड़ा घुमाना ही चाहिये, धर्मकार्य के लिये अमुक तरह का पशुवध करना ही चाहिये, अमुक तरह के अन्धविश्वास रखना ही चाहिये, साम्राज्यवादियों और पूंजीवादियों के अत्याचार दैव के नाम पर चुपचाप सह लेना चाहिये, ये सब बातें सर्वांगीण क्रान्ति के चिन्ह नहीं हैं। हां! मैं मानता हूं कि मनुष्य धीरे धीरे विकसित हुआ

है, धर्मों ने अपने युग के आदमी को आगे बढ़ाया है पर उन धर्मों से चिपटे रहना ठीक नहीं। नाव से नदी पार कर लेना ठीक है पर नदी पार करने के बाद नाव को सिर पर लादे फिरना मूर्खता है। धर्मों ने अपने जमाने में काम कर लिया अब उनका बोझ नहीं उठाया जा सकता।

मैं—पर आगे दूसरी नदी मिल सकती है समुद्र मिल सकता है वहा भी हमें नाव से काम लेना पड़ता है।

मैनेजर—अवश्य। पर वहां पर दूसरी नाव होगी या जहाज होगा। अनेक नदियों के लिये किसी एक नाव से चिपटना ठीक नहीं। जब तक जहां तक जो नाव काम दे तब तक उस नाव से काम लो, बाद में दूसरी पकडो जब उसकी जरूरत न रहे तब उसे भी छोड़ दो।

मैं—क्या इसी सिद्धान्त पर सत्यसमाजियों ने धर्मालय उठा दिये?

मैनेजर—धर्मालय ही नहीं सत्यसमाज भी उठा दिया। सत्यसमाज का जब ध्येय सिद्ध हो गया तब सत्यसमाज की क्या जरूरत रही? आज का मनुष्य पूर्ण विवेकी है, धर्म के झगडे नहीं हैं जातिपाति का भेद बिलकुल नष्ट हो गया है संयम समाज के रग रग में सना गया है राज्य एक सामाजिक संस्था के रूप में सौम्य और सजग हो गया है मनुष्य कष्ट-सहिष्णु वीर और मृत्युजयी हो गया है, अपरिग्रह या निरतिग्रह अब व्यक्तिगत ही नहीं सामूहिक भी हो गया है, संस्कार से मनुष्य विश्वप्रेमी संयमी आदि बन रहा है अब धर्म की, धर्मस्थान की, पूजा प्रार्थना की क्या जरूरत है

और किसी अलग समाज की भी क्या जरूरत है ? अब तो मानव समाज ही सत्यसमाज है।

मैं—मनुष्य बुद्धि का ही पिंड नहीं है उसके पास हृदय भी है हृदय में सद्भावना जगाने के लिये मूर्ति चित्र आदि काफी उपयोगी हैं कम से कम इस दृष्टि से तो विचार करना चाहिये।

मैनेजर—इसका पूरा खयाल किया जाता है। आज के सिनेमा आदि यही काम करते हैं। वे धर्मस्थान का पूरा काम करते हैं। इसके सिवाय बागों में चौराहों पर इतिहास प्रसिद्ध जन-सेवकों की मूर्तियाँ भी रहती हैं। हां ! यह बात जरूर है कि जिनके उपदेश या जिनका जीवन आज के लिये भी पथप्रदर्शक है या आज की परिस्थिति पैदा करने में कारण है उन्हीं के स्मारक इस प्रकार रक्खे जाते हैं। उन पुराने महात्माओं के जो पुराने जमाने में ही पथप्रदर्शक कहे जा सकते थे-स्मारक इस प्रकार नहीं रक्खे जाते। उनके स्मारक धर्म-संग्रहालय या ऐतिहासिक-संग्रहालय आदि में ही देखने को मिलेंगे।

मैं निरुत्तर तो हो ही गया साथ ही सन्तुष्ट भी, फिर भी जिज्ञासु की तरह पूछा—आज के मानव का धर्म क्या है ?

मैनेजर—सत्य। मनुष्य आज सत्य का उपासक है इसी की उपासना या साधना करके वह विज्ञान और संयम की सेवा और सहयोग के मार्ग में इतना बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है।

मैं—पर वह सत्य है क्या ?

मैनेजर—आनन्द और आनन्द का पथ। संसार का हरएक मनुष्य और इसके बाद हरएक प्राणी आनन्दमय हो, चित् का

हरएक अंश आनन्द के ही पथ पर हो प्रत्येक सत्, चित और आनन्द के लिये उपयोगी हो यही सत्य है। सत् का सार चित् है और चित् का सार आनन्द है यही सच्चिदानन्द संक्षेप में सत्य कहा जाता है। संसार का हर एक प्राणी अधिक से अधिक सच्चिदानन्द का धाम हो यही सत्यधर्म आज के मानव का धर्म है।

मैं—सचमुच आप के संसार मे पुराने जमाने का कोई धर्म मजहब सम्प्रदाय आदि नहीं है फिर भी इसके पहिले इतना धर्म इस पृथ्वीपर कभी नहीं रहा। आपका यह नया संसार जिन्दा धर्मालय है।

मैनेजर मुसकराने लगे, मैंने बिदा ली।

(१०) शिक्षण संस्था

दूसरे दिन मैं बच्चों के साथ ही स्कूल चला गया। यद्यपि छोटे-छोटे स्कूल शहर मे अन्यत्र भी थे फिर भी यह स्कूल विश्वविद्यालय के पास था। ये सब शिक्षण-संस्थाएँ शहर के बिलकुल बीच मे थीं। शहर के बीच की जमीन कितनी कीमती होती है यह मैं जानता था पर ऐसी कीमती जमीन शिक्षण-संस्था के लिये खर्च करना और इतना बड़ा अहाता घेरना मुझे आश्चर्य-जनक ही मालूम हुआ।

एक पाठक जी से जब मैं इस बात का जिक्र किया तब वे हँसने लगे। बोले—शहर के बीच की जमीन कीमती क्यों होगी?

मैं—आखिर वह बाजार के मौके की जगह है।

पाठक—आप तो बिलकुल पुरानी दुनिया सरीखी बातें करते हैं। पुरानी दुनिया में जरूर दूकानदार लोग अपनी छोटी सी

दूकान के लिये बाहर की जमीन की अपेक्षा हजार गुणी कीमत दिया करते थे। ग्राहकों को वे शिकार के पक्षी समझते थे, कहा जाल बिछाने से ज्यादः पक्षी फँसते हैं इस हिसाब से दूकान रूपी जाल की जगह के लिये अधिक से अधिक दाम दिया करते थे पर नई दुनिया में इसकी कोई जरूरत नहीं। दूकाने सार्वजनिक हैं वे कहीं भी रहें उन पर उतनी ही बिक्री होगी। शहर में सब जगह एक सी सफाई तथा सब चीजों की सुलभता है इसलिये सभी जगहों की कीमत एक सी है। शिक्षण संस्थाओं को बीच में बनाने से कोई हानि नहीं है। शिक्षण सस्थाओं का सभी नागरिकों से पूरा सम्बन्ध रहता है इसलिये बीच में ही बनाना ठीक है। पुस्तकालय, व्याख्यान-भवन आदि भी यहीं हैं तथा बच्चो को आने में सुभीता है। नई दुनिया मे साधारणतः शहरों को बसाने का क्रम यही है कि बीच में मुख्य मुख्य शिक्षण संस्थाएँ आदि। उससे लगे हुए चारों तरफ न्यायालय, संग्रहालय, पुलिस थाना, पोस्ट, अस्पताल आदि। इसके बाद चारो तरफ बस्ती बाजार आदि। फिर कारखाने आदि। कारखानो के बाद भी थोड़ी थोड़ी बस्ती। चारों दिशाओं मे चार औद्योगिक केन्द्र होते हैं।

इतना कहकर पाठक महोदय चौंक पड़े। बोले—अरे! मैं तो आपको शहर की रचना बताने लगा जब कि आप शिक्षण संस्था देखने आये हैं।

मैंने कहा—यह तो आपकी अयाचित कृपा है।

पाठक—फिर भी आप को शिक्षण शाला ही दिखाना चाहिये। तो चलिये! यह कहकर वे एक ऐसी जगह ले गये जहां

बच्चे खेल रहे थे और बीच में दो तीन महिलाएँ उन्हें खिला रही थीं। थोड़ी देर मे मुझे मालूम हुआ कि यही बच्चों की कक्षा है। कहानियों और गप्पों में ही बच्चों को शिक्षा दी जा रही है। किस तरह उन्हें प्रेम का शिष्टता का कर्मठता का अपने से छोटों के लिये और अपने से बड़ों के लिये त्याग का पाठ पढ़ाया जाता है यह देखकर मैं दंग रह गया। एक तो नई दुनिया की लिपि इतनी सरल और वैज्ञानिक है कि छोटे छोटे बच्चे भी दो चार दिन में सरलता से सीख जाते हैं, बड़ी उम्र के समझदार व्यक्ति के लिये तो दस पाच मिनिट ही काफी है फिर सिखाने की पद्धति इतनी अच्छी थी कि खेल खेल में ही बच्चे सीख जाते थे।

दूसरी बात यह देखी कि पुस्तकों का उपयोग बहुत कम किया जाता था। इतिहास तो कहानियों में सिखा दिया जाता था। पर उन में सम्राटों और राजाओं के गीत नहीं भरे थे उन्हें तो एक तरह के डाकू पढ़ाया जाता था।

विज्ञान का शिक्षण तो प्रयोगमय था ही किन्तु भूगोल का शिक्षण भी ऐसा प्रयोगमय था कि देखकर आश्चर्य होता था। मैं जब सौर भवन में गया तब दंग रह गया। भवन के बीच में विशाल गोला था जो अधर में लटक रहा था और भीतर बिजली के कारण इकदम तेजोमय था। कहा गया कि यह सूर्य है। फिर उसके चारों तरफ सूर्य के ग्रह और ग्रहों के उपग्रह प्रदक्षिणा दे रहे थे। इसे देखते ही खगोल की बहुत सी बातें मालूम हो जाती थीं सूर्य-ग्रहण चन्द्रग्रहण आदि सब मालूम हो जाते थे। दूसरे विश्वभवन में आकाश मंडल बनाया गया था उसमें सप्तर्षि ध्रुव तथा और भ

बहुत से तारे ग्रह आदि बनाये गये थे। पृथ्वी भवन में सोलह फुट व्यास का पृथ्वी-गोला एक तरफ को झुका हुआ अपनी कील पर घूम रहा था। उसे अच्छी तरह देखने के लिये गेलरी बनी हुई थी। यहीं मैंने वह दूरबीन भी देखी जिस में मंगल आदि ग्रह पचास लाख गुणे बड़े दिखते थे। साथ ही मुझसे यह भी कहा गया कि इससे भी अच्छी दूरबीनें बन चुकी हैं। अब ऐसी दूरबीनें बन जायगी जिस में मंगलग्रह के प्राणी बिलकुल साफ दिखने लगेंगे।

कृषि का शिक्षण भी खूब व्यावहारिक था। विद्यार्थी खूब प्रसन्नता से ट्रेक्टर चला रहे थे।

मालूम हुआ कि सोलह वर्ष की उम्र तक हर एक लड़के लड़की को अनिवार्य शिक्षण लेना पड़ता है। साहित्य इतिहास भूगोल अर्थ-शास्त्र विज्ञान कृषि यन्त्र गणित एकाध कोई ललितकला, पाकशास्त्र, शस्त्रसंचालन का ज्ञान इतनी उम्र तक काफी अच्छी तरह हो जाता है। इसके बाद वह कहीं काम पर लगा दिया जाता है और जिस तरह के काम पर लगाया जाता है उस विषय के अभ्यास के लिये दो घंटे शिक्षण और लेना पड़ता है। १८ वर्ष की उम्र में वह पूरी तरह किसी काम में लगा दिया जाता है। किन्तु जो विद्यार्थी सोलह वर्ष की उम्र का शिक्षण समाप्त करते समय विशेष होशयार समझा जाता है उसे आगे शिक्षण के लिये चार वर्ष या छः वर्ष का प्रबन्ध सरकार की तरफ से किया जाता है फिर विशेष काम में लगाया जाता है, मैंने देखा कि पुरानी दुनियां के बड़े बड़े विद्वान की अपेक्षा नये दुनिया के सामान्य नागरिक

की जानकारी विचारकता शिष्टता अधिक रहती है। अपढ़ तो अब कोई है ही नहीं पर नाममात्र का शिक्षित भी कोई नहीं है। विद्वानों के ज्ञानभंडार की तो बात ही क्या है।

मैंने पूछा--कितनी भाषाओं का शिक्षण दिया जाता है?

पाठक-एक भाषा। अब तो संसार भर की एक भाषा और एक लिपि है। और उसी का शिक्षण दिया जाता है। हां पुरानी भाषाओं का तथा भाषा के विकास का विशेष अध्ययन भी कोई कोई करते हैं, विश्वविद्यालय में इसका एक विभाग है। वहां संस्कृत लेटिन हिब्रू प्राकृत हिन्दी अरबी फारसी चीनी जापानी बंगाली गुजराती मराठी उड़िया कनड़ी तामिल तेलगु मलयानिल स्पेनिश फ्रेंच जर्मन रूसी आदि दर्जनों भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का प्रबन्ध है। क्या विचित्र भाषाएँ हैं वे, जितने नियम उससे ज्याद: अपवाद। एक एक भाषा को सीखने में दस दस बारह, बारह वर्ष लग जाते थे और लोग अपनी अपनी भाषा का घमंड करते थे, अपनी बेहूदी भाषा ही दुनिया भर में चलाना चाहते थे। वैज्ञानिक आविष्कार तो एक से एक बढ़कर करते थे पर मनुष्य मनुष्य की बोली समझ सके इसके लिये मनुष्यमात्र की एक सरल सुन्दर भाषा नहीं बना सकते थे। खैर! अब यह बेवकूफी कहीं नहीं है। हां! पुराने बेवकूफों की बेवकूफी पढ़ने के लिये इतिहास में एक लिपि भाषा विभाग खोल दिया गया है।

मैं--पर लोगों ने अपनी अपनी भाषा छोड़ी कैसे होगी?

पाठक-बड़ी खुशी से। कठिन भाषाओं और कठिन लिपियों की जगह संसार व्यापी एक सरल भाषा और सरललिपि

कौन न अपनायगा ? जन्म से तो मनुष्य भाषा लिपि का ज्ञाता नहीं होता, उसे सिखाना पड़ता है। तब जिस दिन से सब देशों के मनुष्यों ने एक सरल भाषा और लिपि बनाकर बच्चों को सिखाना शुरू किया उसी दिन से मनुष्य की एक भाषा होगई जो सभी के लिये अपनी थी। आज की मानव भाषा इतनी सरल है कि कोई भी आदमी महीने दो महीने मे सीख सकता है।

मैं—पर पुरानी दुनिया मे अपनी अपनी भाषा का मोह छुटाना बहुत मुशकिल है।

पाठक—बेवकूफों की दुनिया की बात जुदी है। वहां सभी अपनी भाषा दूसरों पर लादना चाहते है परन्तु मिलकर एक नियमबद्ध सरल भाषा बना नहीं सकते। मनुष्य कैसी कैसी मूर्खताओं में से गुजर चुका है इसकी याद आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मैंने देखा कि नई दुनिया में कोई निकम्मा बोझ बालकों पर नहीं डाला जाता। वहा थोडे से परिश्रम में अधिक से अधिक ज्ञान दिया जाता है।

(११) मातम

अभी साढ़ेचार ही बजे थे कि बाहर किसी ने द्वार खटखटाया ऊपर से सुशीलादेवी ने कहा—कौन ? गिरीश ?

गिरीश—हां चाची, बड़ी दादीजी की तबियत बहुत खराब है।

सुशीला—अच्छा आती हूं।

यह कहकर सुशीला देवी नीचे आने लगीं, तब तक मैं भी चटपटाकर उठ खड़ा हुआ और बाहर निकलकर द्वार खोला।

सुशीला देवी गिरीश के साथ चलने लगीं और मित्र जी से कहा—*प्रमित्र जी, आप भी थोड़ी देर में आजाइये तब तक मैं चलती हूं।*

मैंने कहा—क्या आपके साथ मैं भी चल सकता हूं।

सुशीला—चल तो सकते हैं पर आप क्यों कष्ट करते हैं?

मैं—तब मैं चलता हूं।

यह कहकर मैं भी साथ हो गया। मकान पड़ोस ही में था। दादी जी एक स्वच्छ शय्यापर लेटी थीं उनकी आँखें बन्द थीं। एक डाक्टर और एक दाई बैठे थे साथ ही कुटुम्बी भी निर्निमेष दृष्टि से दादी जी के चेहरे की तरफ देखते हुए बैठे थे। हम लोग भी बैठ गये। सुशीलाजी ने पूछा—डाक्टर, कैसी तबियत है?

डाक्टर—मरणांत का समय है।

सुशीला जी का चेहरा क्षण भर को फीका पड़ गया। फिर उनने सुरीले कंठ से कुछ मन्द और करुण स्वर में गाना शुरु किया—

अब हम जाते हैं घर हो गया पुराना।

दूसरा गीत था—

विदा दो सभी खिलाड़ी आज।

तीसरा गीत था—

रुक न सको तो जाओ।

गीत की एक एक कड़ी ही याद रही पर बड़े ही करुण और बोधप्रद थे वे गीत। दादी जी बोल तो कुछ न सकती थीं पर ऐसा मालूम होता था कि गीत वे सुन रही हैं और उनका असर उनपर पड़ रहा है। क्योंकि बीच बीच में उनके चेहरे पर हलकी

हल्की मुस्कराहट दिख पड़ी थी ।

थोड़ी देर में दादी जी की नाड़ी बन्द होगई । डाक्टर ने कहा—दादी जी ने विदा ले ली ।

गीत रुक गया । लोगों की आँखों में आसू आगये । पर सुशीला जी ने हिम्मत करके दादी के नाती से कहा—भाई आप रोते हैं ?

उनने आंसु पोंछते हुए कहा—नहीं बहिन ।

इतने में नर्सने टेलीफोन उठाकर सब जगह खबर कर दी । पहिली खबर पुलिस चौकी पर की गई दूसरी कारखाने में ।

थोड़ी देर मे पुलिस आगई । पुलिस के आदमियों ने आते ही दादी के शव को सलाम किया । इसके बाद एक के बाद एक लोग दर्शनों को आने लगे, और सलाम करके, कुटुम्बियों से सहानु भूति प्रगट करके जाने लगे । शव के ऊपर सुगन्धित जल छिड़का गया सुगंधित ऊदबत्तियाँ जलाई गईं । इतने में मित्र जी आगये । कुटुम्बियों ने कहा—सुशीला बहिन, तब तक तुम घर हो आओ । मित्र जी वहीं बैठ गये और मैं सुशीला जी के साथ घर आगया ।

पूछने पर मालूम हुआ—दादी जी की उम्र सिर्फ १०७ वर्ष की थी, स्मशान यात्रा शाम को चार बजे होगी । कुटुम्बियों को तीन दिन की छुट्टी मिलेगी । खास खास पड़ोसियों को भी एक दिन की छुट्टी मिलेगी । स्मशान में एक दो आदमी जायँगे, घर का कोई न जायगा । सरकारी आदमी खास मोटर में सन्मान के साथ शव को ले जायँगे ।

मैंने पूछा शव जलाया जाता है या गाड़ा जाता है ।

सुशीला—यह हर एक जगह की स्थिति पर निर्भर है ज्यादः

तर शव जलाये जाते हैं। बिजलीसे शव जला दिया जाता है।

मैं—क्या गाडने का भी रिवाज है।

सुशीला—ऐसी बातों का रिवाज से कोई सम्बन्ध नहीं। अगर कहीं बेकार जगह हो तो वहां शव गाड़े जाते हैं। पर खास खास जंगलों के सिवाय मुर्दे गाड़े नहीं जाते।

हम लोग शौच आदि से निवृत्त होकर फिर वहीं पहुचे, दर्शनार्थी लोगों का तांता लगा हुआ था। थोड़ी देर बाद साधु जी आये। सब लोगों ने उन्हें प्रणाम किया उनने सब को उपदेश दिया कुटुम्बियों को समझाया और चले गये। उनके जाने पर सुशीला ने कुटुम्बियों को भोजन कराया।

चार बजे फिर पुलिस के साथ सरकारी लारी आई। उस पर काले झंडे थे। बीच मे सन्मान के साथ शव रख दिया गया। लोगों ने फूल चढाये। पड़ौसियों में से एक स्त्री और एक पुरुष शव के पास बैठ गये। बाकी पुलिस और सरकारी कर्मचारी थे।

मैंने सुशीलाजी से चुपचाप पूछा—क्या कुटुम्बी एक भी न जायगा?

सुशीलाजी ने कहा—पुलिस क्या कुटुंबी नहीं है? पड़ोसी क्या कुटुम्बी नहीं हैं? सरकारी कर्मचारी क्या कुटुबी नहीं हैं?

मैं—फिर भी घरवालों की भावना का तो खयाल रखना चाहिये।

सुशीला—खयाल रक्खा जाता है इसीलिये उन्हें स्मशान नहीं जाने दिया जाता। एक तो उनके सिर पर जबर्दस्त शोक है फिर उनपर शव संस्कार का बोझ डालना एक तरह की सामाजिक निर्दयता होगी; समाज का काम तो यह है कि कुटुम्बियों को सब तरफ

से निश्चिन्त रक्खे और उन्हें तसल्ली दे। उन्हें भोजनादि कराये उनके स्वास्थ्य को सम्हाल रक्खे।

इसके बाद मैंने देखा कि दादी के कुटुम्बियों को दूसरे दिन सुशीला देवी ने अपने घर भोजन कराया। इसके बाद और भी दो दिन विभिन्न घरों में उनका निमन्त्रण हुआ।

इन दिनों सुशीला जी ज्याद: काम में रहीं बचत का अधिक समय दादी जी के कुटुम्बियों की सेवा में बीतता था मैं भी घूमने नहीं गया। पर बातों बातों में जानने को बहुत मिला।

मालूम हुआ कि घर में मौत कम ही होती हैं क्योंकि ११० वर्ष की उम्र होने पर लोग वृद्ध नगर चले जाते हैं। अपनी जायदाद का एक चतुर्थांश कुटुम्बियो में बाट जाते हैं और तीन चतुर्थांश वृद्ध नगर के कोष में दे दिया जाता है वृद्ध नगर उनका जीवनभर पालन करता है। दादी जी १०७ वर्ष की उम्र में ही चली गईं इसलिये वे वृद्धनगर न जा सकीं। स्थावर संपत्ति तो बटवारे का विषय नहीं है जंगम सम्पत्ति जो बेंक में जमा है उसका तीन चतुर्थांश वृद्ध नगर चला जायगा और एक चतुर्थांश कुटुम्बियों में बट जायगा, कुटुम्ब के हर एक व्यक्ति को बराबर मिल जायगा।

मैं—अगर दादी जी की संपत्ति बेंक मे न होती तो?

सुशीला—दस बीस रुपयों के सिवाय कोई आदमी अपनी संपत्ति घर में नहीं रखता। अगर रक्खे भी तो भी हरएक को अपना हिसाब रखना पड़ता है। किसी भी समय पता लग सकता है कि किस आदमी की कितनी संपत्ति है? दस पांच रुपये की गड़बड़ी

अगर भूल से हो जाय तो उस पर ध्यान नहीं दिया जाता।

मैं–क्या वृद्ध नगर का खर्च वृद्धों की इसी तीन चौथाई संपत्ति से चलता है।

सुशीला–नहीं। यह तो नाममात्र की है। सच तो यह है कि दोचारसौ रुपये से ज्याद: लोगो के पास कुछ बचता नहीं है। हरएक आदमी के वेतन में एक पंचमांश काटकर वृद्धनगर के लिये रख लिया जाता है तीन पचमांश घरू खर्च में समाप्त हो जाता है एक पंचमांश में से कुछ देनलेन, यात्रा और बचत होती है। कलकी चिन्ता न होने से कोई बचत की चिन्ता नहीं करता।

(१२) कालगणना और छुट्टियाँ

सवेरे दूध पीते समय मैंने सुशीला देवी से कहा–देवीजी, एकबार यहां के गांवों को और वृद्धनगर को देखना है पर चाहता हूं आप लोग भी साथ रहें।

सुशीलाजी ने कहा—देखिये अब यात्रा सप्ताह आने वाला है उसी छुट्टी में हम आपके साथ चलेंगे।

मैं–क्या उन दिनों आपको सात दिन की छुट्टी मिलेगी।

सुशीला–हां! सोमवार से शनिवार तक छुट्टी रहती है आगे पीछे के दो रविवार भी मिल जाते हैं।

मैं–देखता हूं पुरानी दुनिया के ईसाइयों की एक चीज यहां मौजूद है और वह है रविवार की छुट्टी।

सुशीला–नहीं। रविवार की छुट्टी इस कारण नहीं है। बात यह है कि हम लोग सारे जगत् में रहते हैं इसलिये सूर्यवार को प्रधानदिन मानकर छुट्टी रखते हैं। दूसरे वार जो ग्रह यां

उपग्रह के नाम पर हैं उनसे सूर्यवार को कुछ अधिक महत्त्व दिया जाता है।

मैंने कहा—आपका कारण बहुत ठीक है। तो वह सप्ताह किस तारीखको शुरु होगा?

सुशीला—इक्कीस तारीख को।

मैं— इक्कीस? उस दिन वार कौन सा होगा?

सुशीला देवी और मित्र जी हँसने लगे, यहां तक कि बच्चे भी खिलखिला पड़े। फिर एक बच्चे ने कहा—२१ ता. को रविवार ही हुआ करता है इसमें पूछने की क्या बात है?

मैंने आश्चर्य से कहा—यह कैसी बात?

तब मित्रजी ने समझाया कि यहां महीना २८ दिन का होता है और १–८–१५–२२ को सोमवार होता है २-९-१६-२३ ता. को मंगलवार, इसी प्रकार अन्य वार।

मैं—तब तीनसौ पैंसठ दिन के वर्ष का हिसाब कैसे बैठता होगा।

मित्र—वर्ष में १३ माह होते हैं। और वर्ष के अन्त में एक शून्य दिन होता है उस दिन न कोई वार माना जाता है न माह। उसे शून्य वार कहते हैं। और चौथे वर्ष जब कि वर्ष ३६६ दिन का होता है तब दो शून्य दिन माने जाते हैं। चिट्ठीपत्री उन दिनों लोग शून्यवार १ या शून्यवार २ लिखते हैं। और इसके साथ सिर्फ संवत्।

मैं—संवत् तो नये संसार का चलता होगा, जब से नया संसार बना।

मित्र—हम लोग इतिहास संवत् चलाते हैं। आज कल १२११० संवत् है पुराने ईस्वी सन् से दस हजार अधिक। व्यक्तियों के नाम के संवत् चलाना हम लोग पसन्द नहीं करते। इसलिये पुराने संवत् सब मिटा डाले। और वे थे भी इतने अल्प-संख्यक कि ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करना कठिन होता था। अमुक सन् या संवत् से इतने वर्ष पहिले आदि इस प्रकार उल्लेख करना पड़ता था।

मैं—जब आप लोग व्यक्तियों के नाम के सन् संवत् नहीं मानते तब उनके स्मरण दिन भी न मानते होंगे। न उनके दिनों की छुट्टी मनाते होंगे।

मित्र—हम लोग महात्माओं के स्मरण दिवस तो मानते हैं और उनके लिये तेरह दिन रक्खे गये हैं। पांच दिन ऐसे लोगों के लिये जिनका महत्त्व और सेवा संसार व्यापी है। और चार दिन अपने राष्ट्र के महात्माओं के लिये, तीन दिन अपने प्रान्त के महात्माओं के लिये, एक दिन अपने नगर के महात्मा के लिये।

मैं—क्या इससे ज्याद: महात्मा नहीं हो सकते?

मित्र-हो सकते हैं और होते हैं। पर हरएक का स्मरण करने के लिये समय की सीमा है। कोई दस पांच वर्ष तक, कोई सौ पचास वर्ष तक। पहिले का समय पूरा हुआ कि उनके स्थानपर दूसरे का स्मृति दिवस आ गया।

मैं—पर प्रकृति का यह नियम तो है नहीं कि पहिले के स्मृति दिवस का समय जब पूरा हो तभी दूसरा महात्मा हो। उसके पहिले पीछे भी हो सकता है।

मित्र–अवश्य ! ऐसे अवसर पर दो के लिये एक दिन नियत कर दिया जाता है। बात यह है कि असीम काल के लिये हम किसी का स्मरण दिवस नियत नहीं करना चाहते। जब तक उसके जीवन से जनता को उद्बोधन मिले तभी तक उसका स्मरण दिवस मनाना ठीक है बाद में सिर्फ इतिहास की पोथियों में और समहालय में उसका नाम रहेगा। किसी एक पुराने व्यक्ति से चिपट जाने से समाज का विकास रुकता है और उसके स्थानपर दूसरे व्यक्ति को स्थापन न करने से वर्तमान का अपमान होता है और जनता के दिल पर ऐसी बुरी छाप बैठती है कि अब हममें पुराने महात्माओं सरीखे महात्मा पैदा करने की शक्ति नहीं रही। यह दीनता बहुत बुरी बात है। इसलिये हम लोग व्यक्तियो के नाम के त्यौहार बदलते रहते हैं।

मैं–पुराने भी चालू रहें और नये भी कायम होते रहें तो क्या नुकसान है ?

मित्र—यह खूब रही ! हमारे सब पुरखे भी जिन्दे रहे और नये बच्चे भी पैदा होते रहें तो क्या घर में या धरती पर जगह भी बचेगी ? यही हाल त्यौहारों का है। साल मे ३६५ दिन हैं, और महात्माओं की गिनती ३६५ से ज्यादः, तब मुर्दो के नाम जपने के सिवाय हमें कोई दिन अपने लिये भी बचेगा ? पुराने निष्प्राण त्यौहारो का अग्नि संस्कार किये बिना हम नये जिन्दे त्यौहार नहीं बना सकते।

मैं—तो आपके यहां सिर्फ १३ त्यौहार होते हैं।

मित्र–नहीं ! हरएक रविवार एक छोटासा त्यौहार ही है।

तेरह महात्माओं के स्मरण दिन। वर्ष के प्रारम्भ में एक दिन नये संसार का स्मरण दिन, और वर्ष के अंत का शून्यदिन। नगर पंचायत चुनाव के दो दिन, जिला पंचायत चुनाव के दो दिन, प्रान्त पंचायत चुनाव के दो दिन। राष्ट्र पंचायत चुनाव के दो दिन, विश्व पचायत चुनाव के दो दिन। इसमें नगर चुनाव प्रतिवर्ष, जिला चुनाव दो वर्ष में, और बाकी चुनाव चार वर्ष में होते हैं। ये भी त्यौहार के दिन समझे जाते हैं। इसके सिवाय यात्रा सप्ताह या वसन्तोत्सव की छुट्टी रहती है। वर्षा के सिवाय प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि में लोग कुछ अधिक जगते हैं इसलिये उसके दूसरे दिन लोग देर से काम पर जाते हैं इस प्रकार आधे दिन की छुटी वह हो जाती है। इसके सिवाय हरएक व्यक्ति को पन्द्रह दिन की छुट्टी और मिलती है जिसे वह इच्छानुसार ले सकता है।

मैं—जो लोग कारखानों में या शिक्षण संस्था आदि में काम करते हैं उन्हें ये छुट्टियाँ मिलती हैं पर सार्वजनिक भोजनालय, रेल, दूकानों आदि में काम करने वालों को ये छुट्टियाँ कैसे मिलती होंगी?

मित्र—हर एक विभाग में अतिरिक्त कार्यकर्ता होते हैं वे बारी बारी से दूसरों के स्थान पर काम करते हैं इस प्रकार इन लोगों को भी कम से कम उतनी छुट्टियाँ मिल जाती हैं जितनी दूसरों को मिलती हैं। इस प्रकार जनता का कोई खास काम रुकता नहीं है और छुट्टी भी सब को मिल जाती है।

"बहुत सुन्दर व्यवस्था है" यह कहकर मैंने सुशीला देवी से कहा—यात्रा सप्ताह की तो मैं बड़ी आतुरता से बाट देख

रहा हूं। पर आज क्या देखूं यह तो बताइये।

सुशीला—आज आप 'हैवानी शैतानी' देख आइये।

मैंने आश्चर्य से कहा—यह क्या आफ़त है!

सुशीला देवी ने हँसकर कहा—यह है पुरानी दुनिया।

मैं—नई दुनिया में पुरानी दुनिया।

सुशीला—आप देख तो आइये।

(१३)—हैवानी शैतानी

'हैवानी शैतानी' एक संग्रहालय था जिस में पुरानी दुनिया के नमूने रक्खे गये थे और पुरानी दुनिया के हैवान और शैतान लोगों के जीवन और कार्यों का चित्रण किया गया था। मेरे साथ और भी लोग थे जिन में किशोर अधिक थे। हमारे समूह के लिये एक पथ-प्रदर्शक भाई मिल गये थे जिनने सब बातें समझाकर बतला दी।

घुसते ही हमें टैंक, तोप, बम बरसाते हुए जहाज, विषैली गेस, मशीनगन आदि के नमूने दिखाई दिये और देखा कि नगर नष्ट होगये हैं, आग की लपटें उठ रही हैं, लाशें आसमान में उड़ रही हैं उनके टुकड़े टुकड़े हो गये हैं।

प्रदर्शक ने कहा-देखिये, एक दिन मनुष्य ऐसा शैतान था, उसने बुद्धि तो पा ली थी पर उसका उपयोग एक दूसरे के नाश में करता था।

यह देखिये एक तरफ अन्न का भंडार भरा पड़ा है और दूसरी तरफ भूख से आदमी तड़प रहे हैं, एक तरफ कपड़े की गोदामों में कपड़े भरे पड़े है, मिल मालिक मन्दी से चिन्तित हैं,

दूसरी तरफ हजारों आदमी चिथड़े पहिने घूम रहे हैं।

देखिये सड़कें नहीं हैं, मकान नहीं है पर उनके बनाने का सामान पृथ्वी में भरा पड़ा है दूसरी तरफ काम करने वाले बेकार फिर रहे हैं दुनिया नरक बनी हुई है।

देखिये एक तरफ लोग खूब खाखाकर बीमार पड़ रहे हैं दूसरी तरफ लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं।

एक दर्शक ने पूछा—पर ऐसा होता क्यों था ? जब काम पड़ा था और काम करनेवाले भी थे तब वे काम क्यों नहीं करते थे।

प्रदर्शक—इसलिये कि उन्हें काम का बदला देने वाला कोई न था। समाज की सारी संपत्ति मुट्ठी भर लोगों के हाथ में थी और उन्हें कोई चिन्ता न थी।

दर्शक—क्या आदमी ऐसा हो सकता है ?

प्रदर्शक—अब नहीं हो सकता पर पहिले ऐसा ही होता था। यह किसी खास आदमी का अपराध नहीं था किन्तु प्रणाली का अपराध था।

देखिये ! जनता ने सरकारें बनाई पर हर जगह की सरकार दूसरी सरकारों से लड़ने में सारी शक्ति खर्च करती थी। एक दूसरे पर चढ़ाई करना एक दूसरे के देश को रौंदना सरकारों का मुख्य काम था। इसके लिये सरकारें प्रजा को खूब चूसती थीं और उसका खून बहाती थीं और जो सच्ची बात कहने आता उसका गला काट डालती थीं, फांसी पर लटकाती थीं, जेल में यातनाएँ देती थीं।

देखिये एक देश के आदमी दूसरे देश के आदमियों पर सवार होते हैं। पुराने जमाने में जो जितना बड़ा हत्यारा लुटारू

होता था वह उतना बड़ा समझा जाता था।

देखिये यह सम्राट है, इसने बहुत से देशों को लूट डाला है और अपने नौकरों से लुटवाता है इसलिये लोग उसकी पूजा करते हैं, ऐसे ही हैवान थे उस जमाने के लोग। बड़े से बड़े अत्याचारियों और हरामखोरों को वे देवता समझते थे।

देखिये ये राजा महाराजा नवाब हैं, प्रजा की कमाई चौपट कर जाते हैं। इनकी बड़ी से बड़ी सेवा यह है कि ये बताते हैं कि आदमी अधिक से अधिक कितना विलासी हो सकता है और दूसरों की कमाई किस बेरहमी से उड़ा सकता है और हड़प सकता है। ये लोग यह नहीं समझते कि ये प्रजा के सेवक हैं किन्तु यह समझते हैं कि प्रजा इनकी सेवक है। जब इनसे पूछा जाता है कि तुम्हें किसने मालिक बनाया तब ये कहते हैं ईश्वर ने, जिसने यह जगत् बनाया। आश्चर्य यह है कि सभी अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहते हैं और एक दूसरे को कुचलना चाहते हैं। इन मे कोई भी ईश्वर से नहीं डरता सिर्फ ईश्वर की ओट में दुनिया को ठगता है।

देखिये कुछ भले आदमियों ने राजा को मिटा दिया है और चुनाव करके शासन करते हैं। पर देखिये, पैसेवाले लोग समाचार पत्रों को खरीद लेते हैं, उनके संचालकों को लांच रिश्वत देते हैं, लाच रिश्वत देकर वोटरों को लुभाकर, झूठी बातों में भुलाकर अपने को या अपने चट्टों बट्टों को चुनवा लेते हैं अथवा सरकारों को लांच रिश्वत देकर अपनी इच्छा पर नचवाते हैं। जनता हैवान है ये शैतान हैं।

देखिये ! लोग कितने मूर्ख हैं एकसा आकार होकर भी जुदी जुदी जातियाँ बना रक्खी हैं और एक दूसरे को नीचा दिखाने को कुचलने की चेष्टा करते हैं, और कहीं कहीं के लोग तो इतने बेवकूफ हैं कि एक दूसरे के हाथ का पानी भी नहीं पीते खाना भी नहीं खाते साथ बैठकर भी नहीं खाते।

बड़े बड़े आविष्कार करते हैं पर सब की बोली एक नहीं कर पाते। अपनी अपनी रद्दी बोलियों और लिपियों से चिपटे हुए हैं। मिलते जुलते हैं पर एक दूसरे का मुँह ताकते रहते हैं। एक दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते। इतनी अक्ल नहीं कि आदमी की भाषा बनाकर वही सब सीखलें। देखिये, पच्चीस आदमी खड़े हैं पर एक दूसरे का मुँह ताकते हैं आदमी होकर भी आदमी की भाषा नहीं जानते।

देखिये ये मजहब के वकील, जिन्हें महन्त, पंडित, मुल्ला, पोप, बिशप, पादरी आदि कहते थे, दुनिया को सिखा रहे हैं कि सब भगवान की माया है अपने किये क्या हो सकता है। अत्याचारी राजाओं जमींदारों पूंजीपतियों को ईश्वर के कृपापात्र कह रहे हैं, उनकी स्तुति कर रहे हैं, मजहब के नाम पर जनता को पागल और बुजदिल बना रहे हैं। साधुओं के नाम से लाखों मुफ्तखोर यही धंधा करते हैं, भोली जनता में मजहबी घमंड पैदा करते हैं। इस लोक के अत्याचार और दुर्दशा भूलने का, उसपर उपेक्षा करने का उपदेश देते हैं और खुद नगद नारायण के भक्त हैं या नाम और पूजा लूटने में मस्त हैं।

देखिये ! स्त्रियों को देखिये। सारी सम्पत्ति पुरुषों के हाथ

में है उसी के बल पर एक बूढा पाचवीवार एक लड़की से शादी कर रहा है और एक बारह चौदह वर्ष की लड़की विधवा है अब वह जीवन भर शादी नहीं कर सकती, अर्थोपार्जन मे अक्षम है इसलिये गुलामी के सिवाय वह दूसरा कुछ नहीं कर सकती। अथवा व्यभिचार को धधा बनाकर वेश्या बन सकती है।

देखिये ये गाव हैं। गन्दे झोपड़ों के झुंड, इनका सब से बडा चिन्ह यह है कि इनके किनारे आते ही मनुष्य को दुर्गन्ध के मारे नाक बन्द करना पड़ती है। चारों तरफ शूकर घूम रहे हैं गाव मे जमीदार तथा दो चार आदमियो को छोडकर बकी सब फटेहाल और भूखे हैं।

ये शहर है। कहीं कहीं ऊंची ऊची हवेलियाँ हैं, साफ सडकें हैं पर बाकी शहर गन्दा और बेकार टांगा से भरा है। शैतानियत और हैवानियत पास पास खड़ी होकर नग्न नाच दिखला रही हैं.

देखिये ये बाजार हैं एक दूसरे को लूटने के, सट्टा जुवा आदि के केन्द्र।

ये हैं जेल। खूनी चोर व्यभिचारी भरे पडे हैं और यहा रहकर रही सही आदमियत को भुलाते जा रहे हैं। यहीं कुछ भले आदमी भी हैं जिनका अपराध यह है कि उनने न्याय की माग की थी। शासकों के अत्याचारों का विरोध किया था। देखिये कुछ लोग फांसीपर लटकाये जा रहे हैं क्योंकि इनने मानव-स्वतन्त्रता की और सब को रोटी मिलने की माग की थी।

जरा इस पुलिस के जवान को देखिये ! आज की दुनिया में इतना अकड़ा आदमी कहीं न मिलेगा, रिश्वत के रुपयों के मारे बेचारे का पाकिट फटा पड़ता है। घमंड में चूर है। वह भले से भले आदमी को बेइज्जत कर सकता है।

ये देखिये ! ये अफसर कहलाते हैं। छोटी रिश्वत नहीं लेते, पर चुपचाप मोटी रकम डकार जाते हैं। इनको हजारों रुपया महीना मिलता है जब कि मजदूर को रूखी रोटी भी नहीं मिलती। प्रजा की आमदनी में से करीब आधी ये या इन का विभाग खा जाता है करीब आधी लड़ाई के लिये रक्खी जाती है बाकी टुकड़े प्रजाहित के नाम पर छितरा दिये जाते हैं।

आगे देखिये ये धर्मस्थान हैं, अहंकार द्वेष और अन्धश्रद्धा के घर। लाखों आदमियों का खून बहाया है इनने, करोड़ों दिलों को तोड़ा है इनने। उस जमाने का बड़ा से बड़ा धर्मपंडित कितना मूर्ख अन्धश्रद्धालु और अविचारी होता था, बड़े से बड़े राजनैतिक और राज्यसंचालक कितने क्षुद्र और स्वार्थी होते थे इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

ऐसा था वह पुराना रुसार।

एक दर्शक—ऐसे नरक में लोग कैसे रहते होंगे ?

प्रदर्शक—रहते थे, रोते थे, भाग्य को या भगवान को दोष देते थे, और उसी नरक से चिपटे रहते थे।

दर्शक—पर ऐसा मालूम होता है कि शोषक कम थे और शोषित अधिक। क्यों नहीं ये लोग शैतानों को मिटा डालते थे।

प्रदर्शक—इसलिये कि ये आदमी नहीं हैवान थे। मौका

मिलने पर ये भी शैतान बनने को तैयार थे। जो लोग फटे-हाल कंगाल थे उनको या उन में से जिस किसी को भी मौका मिलता था वह शैतान बनने को बड़ी खुशी से तैयार था। इतना ही नहीं, एक शोषित अपने से अधिक शोषित का शोषण करता था। अगर उन्हें कोई उस नरक से निकालना चाहता तो वे ही उसके उग्र विरोधी हो जाते थे। क्षुद्र स्वार्थों के कारण इतने अन्धे थे कि वे एक दूसरे को कुचलकर ही आगे बढ़ने की कल्पना कर सकते थे। सामूहिक विकास और न्याय्य सहयोग की कल्पना करना उनके वश के बाहर की बात थी।

दर्शक—क्या उन में भला आदमी कोई न था?

प्रदर्शक—थे और सभी श्रेणियों में थे। विद्वानों साधुओं और श्रीमानों में भी सज्जन थे। अगर न होते तो आज यह नया संसार दिखाई न पड़ता। पर वे थे बहुत कम। सच्चे ज्ञानियों से और सत्यवादियों से वे लोग बाजी मार ले जाते थे जो दम्भी निर्लज्ज और आत्मश्लाघापूर्ण थे। पैसा, दंभ और आत्मश्लाघा उस युग के मुख्य शस्त्र थे। जनता को रिझाना, उसकी आँखों में धूल झोंकना और अपना स्वार्थ सिद्ध करना उस युग का मुख्य मजहब था जिसका स्थान सब मजहबों से ऊपर था। इसलिये सच्चे सेवकों की कोई न सुनता था या बहुत कम सुनता था।

दर्शक—आदमी इतना मूर्ख हो सकता है इसपर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। इस संग्रहालय में अतिशयोक्ति से तो कुछ काम नहीं लिया गया?

मैंने कहा—बिलकुल नहीं। बल्कि कुछ कम ही कहा गया है।

सब चौंककर मेरी तरफ देखने लगे। और कहा—आप कौन ?

मैं—पुरानी दुनिया का जीव।

दर्शक—पुरानी दुनिया के ! और आप कहते हैं कि यह अतिशयोक्ति नहीं है !

मैं—हां ! मैं कहता हूं कि अतिशयोक्ति नहीं है। पुरानी दुनिया शैतानों और हैवानों की दुनिया है और उससे भी बुरी है जिसका चित्रण यहां किया गया है।

सब दर्शक आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे। उन्हें मेरी बातों पर विश्वास करने में बड़ी कठिनाई जा रही थी।

(१४) प्रलय पर विजय

उस दिन तय हुआ कि सब लोग आज सिनेमा देखने चलेंगे। मित्रजी ने टेलीफोन उठाकर सूचना दी, कृपाकर शाम को 'प्रलय पर विजय' खेल के लिये छः टिकिट तैयार रखिये। उत्तर—आया तैयार हैं। टिकिट के नम्बर ७६३२ से ३७ तक हैं। बैठक का नम्बर ३६१ से ३६६ है।

मैंने कहा—अगर पहिले से सूचना न दी होती तो ?

मित्र-तब शायद जगह न मिलने से वापिस आना पड़ता।

मैं—अगर अभी भी जगह न होती तो ?

मित्र—तो अपना नाम लिख लिया जाता और कल मिल जाती।

मैं—यह अच्छा है, नहीं तो धक्कामुक्की और समय की बर्बादी होती।

मित्र—धक्का मुक्की का तो कारण ही नहीं है क्योंकि सब जगह लोग श्रेणी बनाकर अपने नम्बर पर खड़े हो जाते हैं और समय भी बर्बाद नहीं होता क्योंकि जाते ही पता लग जाता है कि टिकिट मिल सकेगा या नहीं कितने टिकिट बाकी हैं यह हर एक दर्शक को पता लगता रहता है। टिकिट की मशीन ऐसी है कि जितने टिकिट बस में रहते हैं उनके नम्बर टिकिट की खिड़की पर लिख जाते हैं। ज्यों ज्यों टिकट निकलते जाते हैं त्यों त्यों नम्बर बदलते जाते हैं जैसे १०००-९९९-९९८ आदि। जनता का समय बर्बाद करना यहां ठीक नहीं समझा जाता।

मैं—पर दूकानों पर तो अवश्य समय बर्बाद होता होगा।

मित्र—नहीं, दूकान की गाड़ियाँ मोहल्ले मोहल्ले घूमती हैं अमुक परिमाण में बाधा हुआ माल देती जाती हैं। इसलिये बहुत कम लोगों को दूकान पर जाना पड़ता है। कोई खास आवश्यकता पर जाना पड़े तो इतनी भीड़ नहीं होती कि समय बर्बाद हो।

मैंने कहा—यहां तुम्हें का प्रत्येक नागरिक नागरिक न कहलाया राजा कहलाया।

मित्र—राजा हमने देखा नहीं, पर राजा का पद नागरिक के पद से ऊंचा नहीं हो सकता।

मैं चुप रहा।

शाम को हम लोग सिनेमा में पहुंचे। कोई धक्कामुक्की नहीं, कोई परेशानी नहीं। अपनी कुर्सियाँ ढूंढने में दो मिनिट से अधिक न लगे यद्यपि वहां हजारों कुर्सियाँ थीं।

खेल शुरु हुआ। उसके तीन भाग थे। प्रलय के पहिले, प्रलय, और विजय। पहिले भाग में सब जगह आनन्द बताया गया था। सन्ध्या का समय था, कहीं लोग घूमने जा रहे थे, कहीं बच्चे खेल रहे थे, कहीं लोग गाना सुन रहे थे, कहीं लोग भोजन कर रहे थे, कहीं नृत्य हो रहा था, कहीं सब कुटुम्बी बैठे गप्पें मार रहे थे। मतलब यह कि सब जगह आनन्द ही आनन्द था।

दूसरे भाग में भूकम्प का भयंकर दृश्य था। जब कि सब लोग आनन्द मना रहे थे इसी समय भयंकर भूकम्प हुआ। बड़ी बड़ी इमारतें उछल उछल कर राख हो गईं, सड़कें फट गईं, लोग दब गये, रेल की सड़कें उखड़ गईं, पुल टूट गये, चारों तरफ आक्रन्दन सुनाई देने लगा, प्रलय उपस्थित हो गया। यह सब कुछ मिनिटों में ही हो गया।

पर इस महान संकट में पड़कर भी लोग घबराये नहीं। जो लोग बचे वे सब अपने अपने मुहल्लों में इकट्ठे हुए और यह तय किया कि सब लोग मलबा साफ करने में लग जायँ, जो घर सुरक्षित हैं उन में घायलों, बच्चों और बूढ़ों को भेज दिया जाय। और एक दो आदमी इधर उधर खबर देने को भेज दिये जायँ, क्योंकि टेलीफोन का सम्बन्ध टूट गया है।

कुछ मिनिटों में ही नगर भवन में सब मुहल्लों के सवाददाता आ गये। मालूम हुआ बहुत दूर तक क्षति हुई है। और बाहर समाचार भेजने के साधन नष्ट हो गये हैं इसलिये मोटर आदि नहीं जा सकती, रेल का व्यवहार भी बद है। ब्राडकास्ट का स्टेशन भी नष्ट हो गया है, पर हवाई स्टेशन पर कुछ हवाई जहाज

सुरक्षित है। बस! चारों तरफ हवाई जहाज दौड़ा दिये गये एक घंटे में दुनिया भर में यह समाचार फैल गया। पता लगा कि करीब बीस हजार वर्गमील में यह उत्पात हुआ है।

नगर के सब लोग मलमा उठाने में बड़े वेग से लगे हैं। आठ आठ दस दस वर्ष के बच्चे भी दौड़ दौड़ कर काम कर रहे हैं। बेटरी की बत्तियां भी ही प्रकाश का न दे रही हैं नहीं तो बिजली के तार टूट जाने से सारे शहर में अंधेरा है। तेल की लालटेनें भी जला ली गई हैं। सैकड़ों मनुष्य निकाले गये हैं और सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाये जा रहे हैं। डाक्टर और नर्सें उनकी चिकित्सा में लगी हैं।

कितना भयंकर दृश्य था। किन्तु लोगों में कितनी कर्मठता थी। खाने पीने की किसी का फुरसत नहीं थी, सब दूसरों के प्राण बचाने में लगे थे। क्या स्त्री क्या पुरुष क्या बालक सब पसीने से तर थे। ऐसा मालूम होता था कि रात भर में ही ये सारा मलमा साफ कर डालेंगे।

इसके बाद भूकम्प-पीड़ित स्थान के बाहर के दृश्य थे। कहीं लोग रेडियो में गाना सुन रहे थे कि गाना इकदम बन्द हो गया। और दूसरे ही क्षण भूकम्प के समाचार मिले, साथ ही यह सन्देश भी कि वहां आदमियों की सख्त जरूरत है। हवाई स्टेशनों पर लोग पहुंचे, थोड़ा बहुत खाना साथ लेलें, प्रकाश की बेटरियाँ और गैस की लालटेनें भी, उस तरफ मोटरें भी भेजी जायँगी, जहां तक सड़कें ठीक होंगी वहां तक लोग मोटरों में जा सकते हैं आगे पैदल जाना होगा या परिस्थिति के अनुसार काम करना होगा।

बस ! इस सन्देश के सुनते ही सब लोग उठ खड़े हुए। कहीं प्रमित्र और कहीं प्रमित्रा जाने को तैयार हो गये। सिनेमा भवन में जब यह खबर पहुची तब सिनेमा बन्द हो गये। जहा जहां खबर पहुंची वहां वहा सब काम बन्द कर लोग हवाई स्टेशन पर पहुंचे।

वहा बड़ी भीड़ थी। हर आदमी चाहता था कि मैं पहिले हवाई जहाज में पहुचूँ। जिन्हें वहा जगह न मिली वे मोटर से रवाना हुए।

सारे भोजनालय जोर से काम करने लगे। खानेवालों ने शाम का खाना बन्द कर दिया जिससे वह सब तैयार भोजन भूकम्प-पीड़ित क्षेत्र में भेजा जा सके।

उधर भूकम्प पीड़ित क्षेत्र में दो घंटे से सब लोग मलमा साफ करने में लगे थे कि इतने में आसमान से घर्र घर्र की आवाज सुनाई दी। चारों दिशाओं से हजारों की संख्या में वायुयान आये और उन मे से आदमी उतरे। नवागन्तुकों ने मलमा साफ करने का काम लिया। स्थानीय लोग कुछ तो यही काम करते रहे और कुछ दूसरी व्यवस्थाओं के काम में लग गये। वायुयान रातभर नये नये आदमी लाते रहे और सब काम करते रहे।

सवेरे भोजन की चिन्ता थी। शहर का अन्न बर्बाद हो गया था। पर वायुयान सवेरे से भोजन सामग्री लाने में लगे थे। यह बात सब ने आप से आप समझ ली थी कि ऐसे मौके पर आधा पेट रहना चाहिये।

एक कुटुम्ब में पाच आदमी थे पर उनने भोजन किया दो

का । मैनेजर ने कहा—कम से कम तीन का तो ले जाइये । पर भोजन लेनेवाले ने कहा—अभी इतना ही काफी है इस संकट में इतना भी किससे खाया जायगा ?

कुटुम्ब ने थोड़ा थोड़ा खाया यहां तक कि बच्चों ने भी पर मा बाप ने बच्चों के लिये कुछ अधिक छोड़ दिया, तब बड़ा बच्चा पेट फुलाकर बोला—देखो मा, मेरा पेट तो खूब भर गया है अब मुझे भूख ही नहीं है । दूसरा बच्चा भी बोला—मेरा भी पेट भर गया है मा । और लड़की भी पेट दिखाकर बोली—और मेरा भी।

इस दृश्य को देखते ही मैं रो पड़ा ।

दूसरे दिन शाम तक करीब करीब मलवा साफ हो गया था । शाम के समय नगर चौक में सब लोग पहुंचे, वहां घोषणा हुई कि तीन आदमी नहीं मिल रहे हैं और १७ की लाशें मिली हैं । १३७७ आदमी घायल हुए हैं और उनके बचने की पूरी आशा है ।

यद्यपि भूकम्प के प्रकोप को देखते हुए ये मौतें काफी कम थीं फिर भी सारी जनता को उन २० आदमियों के मरने का बड़ा खेद हुआ । सब लोग इसी तरह रोने लगे जैसे कोई घर का आदमी मर गया हो । १३७७ आदमी जो बच सके इसका कारण तुरन्त ही सारे नगर का और बाहर वालों का सफाई के काम में लग जाना था ।

विशाल नगर के चारों तरफ सैकड़ों ग्राम या उपनगर फैले हुए थे । रात में वहां भी वायु यानों ने आदमी उतारे थे दिन में भोजन की सामग्री उतारी गई थी । मोटर से आने वाले आदमी सहायता को आ गये थे और सड़कों के साफ हो जाने से जरा

मोटर गाड़ियाँ रुक जाती थीं वहां मोटर के आदमी तुरन्त सड़क साफ़ करने में लग जाते थे। मोटरें वापिस आ कर बड़े औजार तथा खाद्य सामग्री ले जाती थीं।

चार पांच दिन में भूकम्प पीड़ित प्रदेश में इस पार से उस पार मोटर रेलगाड़ियाँ आदि आने जाने लगी थीं। एक देश की नहीं किन्तु सब देशों की शक्ति नव निर्माण में लगी हुई थी। रात दिन काम चलता था। और दो महीने के भीतर तो सारा भूकम्प-पीड़ित प्रदेश ज्यों का त्यों आबाद हो गया था।

दृश्य बड़े हृदय-द्रावक थे। एक जगह जमीन के फटने से उसमें मोटर समा गई थी पर चार पांच महिलाओं ने किस बहादुरी से वह मोटर निकाली।

जहां वायुयानों को जमीन पर आने के लिये जगह न थी वहा किसप्रकार आसमान से स्त्रियाँ और पुरुष कूद पड़ते थे और सहायता को पहुच जाते थे।

जब घायल घरों में लाये जाते थे तो घर में उनका कैसा स्वागत होता था। किस प्रकार बच्चे तक उनकी सेवा में लग जाते थे!

नव निर्माण में किस तरह नरनारी और बालक बालिकाओं ने काम किया!

यह सब देखकर मैं चकित ही नहीं हुआ पर हर्ष के मारे मेरा गला भर आया, रोने लगा।

यह प्रलय पर मनुष्य की विजय थी। और इसका मुख्य कारण यह था कि नई दुनिया में विश्व का एक समाज है, एक

राष्ट्र है, और सब का एक कुटुम्ब है। न यहां कोई शोषक है, न कोई शोषित। यहां मजहब या सम्प्रदाय नहीं हैं पर जिन्दा धर्म है और है उसके पालन करने के लिये सच्ची बहादुरी और त्याग।

(१५) गांवों की ओर

आखिर वह यात्रा-सप्ताह आही गया। कार्यक्रम तय हुआ कि सब वृद्धनगर तक जायँगे और वृद्धनगर में तीन चार दिन रहेंगे और रास्ते में एक एक दिन किसी किसी गांव में ठहरेंगे।

रविवार के सबेरे ही हम लोग रेल में सवार हुए।

गाड़ी चली जाती थी तीन तीन चार चार मील पर ठहरती थी क्योंकि तीन या चार मील पर गांव आता है। दो गांवों के बीच में एक लम्बा खेत रहता है। छोटे छोटे सैकड़ों खेत नहीं दिखाई देते। सब खेत पंचायती या सरकारी हैं। खेती में अधिकतर उपयोग मशीनों का होता है। लोगों को साढ़े छः घंटे काम करना होता है। आधा घंटा काम पर पहुंचने का और आधा काम से लौटने का, इस प्रकार साढ़े सात घंटा लगता है।

मने कहा—सुशीला देवी, यात्रा-सप्ताह में यात्रा का आनन्द तो पूरा आयगा लेकिन इस समय सभी जगह छुट्टियाँ होने से लोगों को काम करते हुए देखने का अवसर न मिलेगा।

सुशीला देवी ने कहा—यात्रा-सप्ताह सभी जगह एक साथ नहीं होता किन्तु हर गांव या नगर के यात्रा सप्ताह का समय जुदा जुदा होता है। अगर यात्रा सप्ताह एक साथ हो तब सब की परेशानी बढ़ जाय। यात्रा में आप मेरे घर आयँ तो मैं न मिलूं और मैं आप के घर जाऊं तो आप न मिलें, सब को मुसाफिरखानों में

ठहरना पड़े और रेलों में भी बड़ी भयंकर भीड़ हो जाय, मुसाफिर-खानों में भी जगह न मिले। इसलिये यात्रा सप्ताह का समय सालभर घूमता ही रहता है। पहिला और अंतिम सप्ताह छोड़कर बीच के पचास सप्ताह पचास स्थानों के यात्रा सप्ताह होते हैं। अभी जहां जहां चल रहे हैं वहां वहां यात्रा सप्ताह अभी नहीं है।

मैंने सन्तुष्ट होकर कहा—आखिर यह नया संसार है। यहां समता में भी अन्धविश्वास या गतानुगतिकता से काम नहीं लिया जाता किन्तु विवेकपूर्ण ... से काम लिया जाता है।

स्टेशन से लगा हुआ गांव था। रेल के स्टेशन से ही ट्राम जाती थी जो गांव के बगल से होकर खेतों में से आगे बढ़ जाती थी। मालूम हुआ करीब पचास मील की दूरी पर दूसरी रेल लाइन है वहां तक ट्राम जाती है। हर एक गांवके किनारे से या बीच से ट्राम गाड़ी गुजरती है। इस प्रकार हरएक गांव पक्की सड़क और ट्राम लाइन के किनारे है। अब दस दस बीस बीस झोपड़ियों के गांव नहीं हैं किन्तु हजार बारह सौ महलों के नगर ही गांव हैं। हां! उन घरों को महल ही कहना चाहिये। सब घर दुमंजिला हैं और पक्के बने हुए हैं। घर के आगे और बगल में थोड़ीसी जमीन है जहां घरवाले लोग शाक भाजी, पुष्प लताएँ, पपीते आदि लगा लेते हैं। सब घरों में नल से पानी पहुंचता है। खाली जमीन के एक किनारे चलते फिरते संडास बने हैं। जमीन में एक गड्ढा कर दिया जाता है उस पर लकड़ी और टीन का कमरा रख दिया जाता है यही संडास है। मल उसी गड्ढे में पड़ जाता है और हर दिन ऊपर से मिट्टी डाल दी जाती है। दूसरे साल दूसरा

गड्ढा बनाया जाता है और पहिले गड्ढे का मल खाद बन जाने पर खेतों में काम में लिया जाता है। हर दिन मिट्टी पूरते रहने से दुर्गन्ध बिलकुल नहीं आती।

गांव के बीच में रंगभवन होता है। इसमें रंगमंच के आगे करीब पांच हजार आदमी बैठ सकते हैं। हर एक गांव की जनसंख्या भी पांच हजार के करीब होती है। सिनेमा इसी रंगभवन में दिखाया जाता है। व्याख्यान भी इसी में होते हैं। ग्राम पंचायत की बैठकें आदि भी इसी में होती हैं। नाटक नृत्य आदि की जगह भी यही है।

रंगभवन के चारों तरफ मैदान है यहीं पर नाना तरह के खेल खेले जाते हैं। मैदान के किनारे शिक्षण संस्था, पोष्ट आफिस, आदि हैं। ग्राम पंचायत का कार्यालय भी यहीं है। विशाल वाचनालय भी यहीं है, जिस में करीब पन्द्रह दैनिक, बीस साप्ताहिक और पचास मासिक पत्र आते हैं। रंगभवन में रेडियो भी है कोई कोई लोग रेडियो सुनते हैं। हालांकि हर एक घर में भी रेडियो का प्रबन्ध है। रंगभवन के बगल में अतिथिशाला सार्वजनिक भोजनालय अस्पताल और स्टोर है।

गांव का यही केन्द्र है और इसके चारों तरफ गांव की बस्ती है। बस्ती के किनारे कारखाने हैं। हर एक गांव में एक न एक कारखाना होता ही है। जहां रुई पैदा होती है वहां बिनौले निकालने के कारखाने हैं। बिस्कुट वगैरह गांव में ही बनते हैं। गांव में पैदा होनेवाली जो चीज पक्की करके बाजार में बेची जा सकती है उसके कारखाने उसी गांव में होते हैं। हां जिन कारखानों के लिये एक

गांव का कच्चा माल नहीं, पुतले वे पांच दस गाव के बीच में बनाये जाते हैं। बड़ी बडी कपड़े की मिलें, कागज और लोहे के कारखाने, समाचार पत्र और पुस्तकें छापनेवाले बड़े बडे प्रेस, आदि शहरों में होते हैं। स्कूल का शिक्षण हर एक गाव में पूरा हो जाता है पर कालेज के शिक्षण के लिये नगर में जाना पड़ता है।

गाव में हर एक घर के सामने पक्की सडक होती है तथा नगर की ओर भी सब सुविधाएँ पहुंचीं हैं इसलिये गांव के जीवन से कोई नापसंद नहीं करता। चारों तरफ सफाई होती है। एक तो लोग खुद ही गन्दगी नहीं करते फिर झाडने की मशीनों से सडकों की सफाई कर दी जाती है। सफाई का काम स्कूल के विद्यार्थियों के जिम्मे है। सड़कों पर रात में प्रकाश का पूरा प्रबंध है।

सब जगह चीजों का एक भाव है। स्टेशनरी आदि शहर में जिस भाव खरीदते हैं उसी भाव गाव में भी। इधर से उधर चीज पहुंचाने का खर्च उसमें जोड़ लिया जाता है।

मैंने देखा—बाजार है ही नहीं। पूछने पर मालूम हुआ कि बाजार की लोग जरूरत नहीं समझते। एक ही चीज की बीसों दूकानों की क्या जरूरत है? बीस दूकानों पर चालीस आदमी लगेंगे। खरीदने वाले तो उतने ही है सो दूकानदार ग्राहकों की बाट देखते हुए समय बर्बाद करेंगे। समाज की इतनी शक्ति क्या बर्बाद होना चाहिये। गांव में तीन स्टोर हैं। एक गांव के बीच में रंगभवन के पास, बाकी थोड़ी थोड़ी दूर पर। एक स्टोर को एक एक बाजार समझिये। उस में सब चीजें मिलती हैं। रंगभवन के पास जो स्टोर है वह दोनों से बड़ा है।

पुराने संसार में तो कोई दूकान इसलिये थोड़े ही खोली जाती थी कि बस्ती को उसकी जरूरत है। एक ही चीज की दस दूकानें रहने पर भी ग्यारहवीं खुलती थी। भले ही उन दस दूकानों को पूरे ग्राहक न मिलते हों। पर नये संसार में यह बात नहीं है। कितने ग्राहक हैं और उन्हें सौदा देने के लिये कितने आदमी लगेंगे उसके हिसाब से [स्टोर] मे आदमी रख दिये जाते हैं बाकी आदमी निर्माण के अन्य कामों में लगा दिये जाते हैं। कुछ तो यंत्रों की बहुलता से और कुछ इस प्रकार की सुव्यवस्था से मानव शक्ति की जो मितव्ययिता की गई है उसी का तो यह परिणाम है कि लोग ६-७ घंटे काम करते हैं फिर भी गांव गांव में और नगर नगर में स्वर्गीय वैभव दिखाई देता है। पुरानी दुनिया में एक तो यंत्रों का इतना उपयोग न होता था, दूसरे किसी तरह पेट की रोटी के लिये हजारों आदमी निकम्मे और अनावश्यक धंधे करते थे। बस्ती को जहां पांच दूकानों की जरूरत थी वहां पचास खुलती थी इस प्रकार पैंतालीस कुटुम्ब व्यर्थ ही शक्ति और समय गमाते थे। इसके सिवाय जमींदार, पूंजीपति, राजा महाराजा, सैनिक सटोरिये आदि भरे पड़े थे। ये लोग तो निकम्मे थे ही पर इनकी सेवा में हजारों मनुष्य नौकर बनकर मानव जीवन की शक्ति बरबाद कर रहे थे। इसके सिवाय लाखों करोड़ों बेकार और भिखमंगे होते थे उनकी शक्ति भी बर्बाद जाती थी। समाज के लिये वे भी बोझ थे, पर पूंजीवाद के कारण उन से कुछ काम नहीं लिया जा पाता था। पुरानी दुनिया में मानव शक्ति का कितना दुरुपयोग होता था इसकी कल्पना भी नई दुनिया का

नागरिक नहीं कर सकता ।

नई दुनिया में हर चीज का और शक्ति के हर एक अंश का अधिक से अधिक उपयोग किया जाता है । सड़कों के किनारे ही देखो न, पुरानी सड़कों के किनारे भी झाड़ होते थे पर नीम बंबूल बड़ पीपल आदि । जिनके फलफूल किसी विशेष काम के नहीं । पर नई दुनिया में वैज्ञानिक तरीके से नपीतुली दूरी पर आम आदि के ही झाड है ! फलवृक्षों की एक से एक बढ़ियाँ किस्में तयार की गई हैं और सड़कें उन्हीं से भरी हुई हैं । पहिले हर एक पथिक फलवृक्षों के फलों का चोर होता था अब हर एक पथिक उन का रखवाला है । करोड़ों मन फल अब सड़कों के फलवृक्षों से मिलते हैं ।

पहिले उर्वर जमीनों में ही लोग घर और गाव बना लेते थे । और पहाड टेकरियाँ खाली पड़ी हुई थीं । पर अब बस्तियां प्रायः टेकरियों और पहाड़ों पर हैं । एक गाव बसाने में अब पांच-सौ छः सौ एकड़ जमीन लग जाती है, पहाड़ी पर गाव बसाने में इतनी जमीन अन्न के लिये बच जाती है । टेकड़ी या छोटे पहाड़ों पर चढने के लिये दोनो तरफ काटकाट कर ढालू रास्ते बनाये गये हैं और उनका ढाल ऐसा रक्खा गया है कि ट्राम भी उन पर मजे से चली जाती है । जिन टेकरियों और पहाड़ों पर पानी नहीं मिलता वहां तलहटी के पास बनाये गये बडे बडे कुंओं से एंजिन और नल द्वारा पानी पहुंचाया जाता है । स्नान आदि का पानी भी व्यर्थ नहीं जाने दिया जाता, पक्की नालियों द्वारा वह सारा पानी सिंचाई के काम में लिया जाता है इसलिये पहाड़ों के

ऊसर और निर्जल मुंडे शिखर अब बारह महीने नंदनवन की कल्पना सरीखे सरसब्ज दिखाई देते हैं।

मैंने सुशीलादेवी से कहा—नई दुनिया के गांव अच्छे होंगे यह तो मैं समझता ही था, पर वे इतने अच्छे होंगे इसकी मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था।

सुशीला जी मुसकराने लगीं।

इस गांव से ट्राम में बैठकर हम लोग पचीस मील पूर्व की ओर गये। यह गांव भी वैसा ही था। हम लोग शाम को पहुंचे मालूम हुआ कि बहुत से लोग खेत पर काम करने जा रहे हैं। मैंने पूछा—क्या रात में भी काम करना पड़ता है?

मित्र जी ने कहा—आज कल दिन में गर्मी पड़ती है इसलिये दुपहरी का समय आराम करने के लिये दिया जाता है। खेतों में रात को काम होता है। अभी लोग जायँगे और एक बजे रात को लौट आयेंगे फिर सबेरे तक सोयेंगे। दस बजे तक खापीकर फिर आराम करेंगे; शाम को काम के लिये फिर निकलेंगे। अब किसानों को कड़ी धूप में काम नहीं करना पड़ता।

मैं—कभी कभी खेतों पर अधिक काम भी आ जाता होगा?

मित्र—अवश्य। उन दिनों लोग दस घंटे काम करते हैं और काम धीमा पड़ने पर सिर्फ तीन चार घंटे। टोटल बराबर हो जाता है। नगरों में जितनी छुट्टियाँ होती हैं उतनी यहां भी, पर समय का [illegible] रहता है। उदाहरणार्थ वर्षा ऋतु में रविवार की छुट्टी नहीं रहती पर अति वर्षा की छुट्टी रहती है या जिस दिन

खेत पर काम नहीं रहता है उस दिन की छुट्टी रहती है। इन बातों का निर्णय ग्राम पंचायत करती है।

मैं—ग्राम पंचायत और जनता की इच्छा में मतभेद हो तब क्या किया जाता है?

मित्र—ऐसा प्रायः नहीं होता। पर जब किसी खास प्रश्न पर ऐसा मतभेद उपस्थित हो जाता है तब साधारण जनता की बैठक होती है उसमें अठारह वर्ष से अधिक उम्र के हर एक व्यक्ति को—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष—वोट देने का अधिकार है। उसी के अनुसार निर्णय होता है। ग्राम पंचायत छोटी से छोटी बात में भी मनमानी नहीं कर सकती। चुनाव हो जाने पर कोई यह सोचे कि अब दूसरे चुनाव तक चुननेवालों के मत से कोई मतलब नहीं, तो यह भूल है। जनता कभी भी चुने हुए सदस्यों को वापिस ले सकती है या उनके निर्णय को रद कर सकती है। पर पंचायत के सदस्य ऐसी भूल कभी नहीं करते उन्हें पूर्ण निष्पक्ष रहकर काम करना पड़ता है। उनकी मनोवृत्ति भी ऐसी होती है।

मैं—खैर! यह बात प्रकरण के बाहर चली गई। पर मेरी इच्छा है कि खेत पर चला जाय।

सुशीला देवी—पहिले पेट पूजा जरूरी है।

मैं—सो तो है ही, मंगलाचरण के बिना कोई काम शुरु न करना चाहिये।

हम सब हँसते हुए भोजनालय की ओर गये, और भोजन करके खेतों की ओर बढ़े। चांदनी रात थी, आसमान साफ था।

खेतों में धड़ाधड़ मशीनें चल रही थीं। मशीनों से दौंयें होती थी उन्हीं से उड़ावनी। जरा दूर पर ट्रैक्टर चल रहे थे। जहां ट्रैक्टर चला कि घास की गहरी जड़ भी उखड़ जाती थी। मालूम हुआ कि बरसाती फसल में भी खेतों में घास नहीं लगता। फिर भी मशीन के डौरे रक्खे हुए हैं, सात सात आठ आठ लाइन में एक साथ डौरा होता है। बोनी इस तरह माप से होती है और डौरा इस तरह चलाया जाता है कि सात सात आठ आठ लाइन के डौरे में भी पौधों को धक्का नहीं लगता। रासायनिक प्रक्रिया से अच्छा खाद तैयार किया जाता है। खेतों का पानी बहकर बहुत ही कम बाहर जाता है। पानी के संचय से जिन खेतों की फसल मारी जाने का डर है उन में या तो चावल बोया जाता है या उन्हालों की फसल पैदा की जाती है।

एक महत्वपूर्ण बात यह हुई है कि हर एक किस्म के बीजों पर वैज्ञानिक संस्कार डाला जाता है। गेहूं के बीज ऐसे भी मिलेंगे जो बर्फ गिरते हुए स्थानों में भी उग सकें और ऐसे भी मिलेंगे जो गर्म देशों में कीचड़ में भी उग सकें। बीज संस्कार प्रक्रिया ने पृथ्वी और पानी पर विजय प्राप्त करली है। और फसल भी जल्दी तैयार हो जाती है। बीज संस्कार, वैज्ञानिक खाद, चूहों आदि का न होना, अच्छी मिहनत, यंत्रों का उपयोग आदि के कारण फसल कईगुणी हो गई है।

मैंने कहा—खेतों की रखवाली का क्या प्रबंध है। मालूम हुआ अब इसकी जरूरत नहीं है। देश का हरएक नागरिक इसका रखवाला है। आदमी तो चोरी करता ही नहीं। करे भी क्यों!

और जंगली जानवर भी अब नहीं हैं, यहां तक कि चूहे और कौवे तक नहीं हैं। तब रखवाली की क्या जरूरत ? हां ! सड़क के किनारे किनारे तार लगे हुए हैं जिससे कोई भूला भटका जानवर खेत में न पहुंच जाय।

गांवों की यह व्यवस्था मेरे लिये कल्पनातीत थी। दोनों गांव देखकर तबियत खुश हो गई इसके बाद करीब पचास मील आगे और बढ़े, और एक नगर में पहुंचे। यह रेल का अच्छा स्टेशन था। शहर की जनसंख्या करीब अस्सी हजार थी। करीब नौ हजार एकड़ में नगर बसा था पर नगर का बहुभाग टेकरियों पर था। ट्रामें भी इसलिये कहीं भी जाने में सुभीता था।

यहां एक बड़ासा तालाब था। तालाब के बीच में छोटे छोटे चबूतरे बने हुए थे। इनमें सैकड़ों बालक बालिकाएँ और वयस्क व्यक्ति भी हर दिन तैरने आते हैं। तालाब में तैरते तैरते कोई थक जाय इसलिये बीच में चबूतरे बने हुए हैं। चांदनी रात में नौका विहार करने के लिये दर्जनों नौकाएँ पड़ी हुई हैं।

हर एक स्त्री पुरुष हफ्ते में एक दिन अवश्य तैरता है और दो तीन घंटे जलक्रीड़ा में बिताता है।

मैंने पूछा—तालाब कितना गहरा होगा।

सुशीला देवी—किनारे से पचीस फुट तक तीन फुट, फिर पचीस फुट तक चार फुट, फिर पचीस फुट तक पांच फुट, इस प्रकार बढ़ते बढ़ते काफी गहरा है।

इस में कभी कोई डूबा कि नहीं ?

ऐसी घटना आज तक नहीं सुनी गई। डूबने का कारण

क्या है ? जगह जगह चबूतरे हैं, तैरते हुए पौधे पड़े हुए हैं, नावें हैं। पानी में किसी भी तरह का घास है नहीं, छोटी छोटी मछलियों के सिवाय और कोई जन्तु भी नहीं है, नीचे तक में कीचड़ नहीं है फिर डूबने का क्या कारण?

यह शहर तो और भी अच्छा है। तैरने का बड़ा आराम है।

थोड़े बहुत अंश में यह आराम सब जगह पाया जाता है। अपने शहर में भी इससे छोटे छोटे दो तालाब हैं पर शहर घूमने के मारे ही आप को फुरसत नहीं मिली। गांवों में भी चार पांच गांवों के बीच में तालाब बनाये ही जाते हैं। उन में सिंघाड़े आदि की खेती भी की जाती है पर अमुक भाग तैरने के लिये सुरक्षित रक्खा जाता है।

यहां हम सब ने निश्चिन्तता से दो घंटे तक खूब नहाया। और जलक्रीड़ा की।

स्नान करते करते मित्रजी ने कहा—यहां भी एक साधुजी रहते हैं, कहिये तो उनके दर्शन करायें।

मैंने कहा—जरूर ! अगर कुछ चर्चा करने का मौका मिले तो मैं एक दिन यहीं बिताने को तैयार हूँ।

१९—वैज्ञानिक साधु

जब हम लोग साधुजी के यहां पहुँचे तो उनका महल देख कर मैं दंग रह गया। आलीशान कमरों में सैकड़ों यन्त्र रक्खे हुए थे और वहां कुछ युवक काम कर रहे थे। मैंने चकित होकर कहा—आप साधुजी के यहां ले चलने की बात कर रहे थे न ?

मित्र—हां, यही तो ले आया हूं। ये वैज्ञानिक साधु हैं। इन्होंने विज्ञान के बड़े बड़े आविष्कार किये हैं। अगर इनके आविष्कार न हुए होते तो नई दुनिया के इस रूप का जिन्दा रहना असम्भव होता।

साधुजी एक लम्बे चौड़े कमरे में बैठे थे। एक तरफ टेबल पर कुछ यन्त्र से रक्खे हुए थे। दूसरी तरफ कुछ पुस्तकें और लिखने पढ़ने का सामान। बीच में तख्त पर आप बैठे थे। हम लोग प्रणाम आदि करके एक ओर बैठ गये। कुछ मिनिटों में मेरा परिचय भी दे दिया गया। इसके बाद मैंने कहा—नई दुनिया देखकर मुझे आशातीत प्रसन्नता हुई है और यह सब आप सरीखे वैज्ञानिकों का प्रताप है।

साधुजी—वैज्ञानिकों का भी इसमें हाथ है इसमें सन्देह नहीं, पर क्या तुम यह समझते हो कि केवल विज्ञान से मानव समाज इतना सुखी हो सकता था?

मैं—नहीं। इसके लिये लोगों के हृदय में संयम, और मनुष्य मात्र में कौटुम्बिकता का भाव, तथा सत्यनिष्ठा जरूरी है फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि नई दुनिया में से बिजली या यंत्र निकाल दिये जायें तो नई दुनिया आधी न रह जायगी।

साधुजी—फिर भी लोग पुरानी दुनिया के वैज्ञानिक युग से भी अधिक सुखी रहेंगे।

मैं—पर इसका कारण यह है कि पुरानी दुनिया का सुख नई दुनिया के सुख का शतांश भी नहीं है। विज्ञान के बिना पुरानी दुनिया की अपेक्षा नई दुनिया के लोग पचास गुणे अधिक

सुखी भले रहें फिर भी आज की अपेक्षा आगे भी न रहेंगे।

साधुजी—हां! इतना श्रेय तो विज्ञान को देना ही पड़ेगा।

मैं—पर क्या मैं एक प्रश्न कर सकता हूं?

साधुजी—खुशी से

मैं—विज्ञान के सारे आविष्कार मिट्टी के तेल, पत्थर का कोयला, तथा लोहा आदि धातुओं के आधार से चल रहे हैं। पर पृथ्वी के गर्भ में तो ये चीजें सीमित हैं तब ये आविष्कार कब तक काम देंगे?

साधुजी—ये चीजें तो करीब करीब काम दे चुकीं। अब तो बहुत कम काम इनसे लिया जाता है। पुरानी दुनिया से नई दुनिया का विज्ञान काफी आगे बढ़ चुका है। अब हम मिट्टी से धातु बनाते हैं, अणुओं से शक्ति लेते हैं। जल प्रपात, समुद्र की लहरें हमारे कारखाने चलाती हैं, आसमान की बिजली हम पकड़ कर रखते हैं। अब बादलों की एक भी चमक व्यर्थ नहीं जाती। हवा का प्रत्येक तूफान लाखों वोल्ट बिजली दे जाता है। तुम विज्ञान तो पढ़े हो?

मैं—जी नहीं, फिर भी मेरी योग्यता के अनुसार जो कुछ समझा सकें समझाने की कृपा कीजिये।

साधु—देखो, यह सारा जगत परमाणुओं से बना है। असंख्य परमाणुओं से अणु बनता है। पर अणु परमाणुओं का ठोस पिंड नहीं है। अणु की रचना सौर जगत सरीखी है। अणु के बीच में अणुसूर्य होता है जो बहुत से परमाणु का बना है। उस अणुसूर्य के चारों तरफ सैकड़ों अणुग्रह चक्कर मारा करते हैं। जैसे सूर्य के

चारों तरफ पृथ्वी आदि ग्रह घूमा करते हैं। अपने में सौर जगत् सरीखा विशाल किन्तु बाहर से अदृश्य, और बहुत ही छोटा अणु होता है। हरएक पदार्थ ऐसे ही अणुओं से बना है। ये अणु जहाँ नहीं बदलते इसलिये करीब करीब एक सरीखे अणुओं से जो पदार्थ बनते हैं उन्हें तत्त्व कहते हैं। पुरानी दुनिया में थोड़े तत्त्व माने जाते थे पर अब उनकी संख्या और बढ़ गई है। ये तत्त्व-भेद अणुओं की रचना के भेद पर निर्भर हैं। एक तत्त्व के अणु में जितना बड़ा अणुसूर्य होता है उसमें जितने अणुग्रह होते हैं वे जितनी दूरी से चक्कर मारते हैं, दूसरे तत्त्व में वैसे नहीं होते। उनका अणुसूर्य बड़ा या छोटा होता है, अणुग्रहों की संख्या भी अधिक या कम होती है उनका भ्रमण भी बड़ा या छोटा होता है। ये अणु प्राकृतिक शक्ति के असीम भंडार हैं।

एक अणु के भीतर अगर दूसरा अणु ठूंसा जाय तो उसमें भयंकर क्रान्ति होगी। अणुसूर्य फट जायगा और उसके फटने से काफी परिमाण में गर्मी या बिजली पैदा होगी। एक रत्ती भर अणुओं को फाड़ा जाय तो उससे इतनी गर्मी पैदा होगी जितनी कई हजार मन कोयला जलाने से होती है। आज का विज्ञान इस शक्ति का उपयोग करता है, अणु-परिवर्तन से वह धातु-परिवर्तन करता है। इसलिये अब हमारे सामने न धातुओं की कमी का सवाल है न बिजली की कमी का। हर एक पिंड में जो गुरुत्वाकर्षण है उसीसे इतनी गति और संघर्ष पैदा होता है कि इस शक्ति के शतांश के भी उपयोग करने की हम में योग्यता नहीं है। अब हम असीम वैभव के लिये इस तरफ से निश्चिन्त हैं।

सुशीला—और इस निश्चिन्तता का श्रेय आपकी और माताजी की तपस्या को है।

साधुजी—उँह ! इसमें हम लोगों का क्या ? समाज ने सुविधाएँ दीं और हमने उनका उपयोग किया ।

माताजी का उल्लेख होते ही मैंने पूछा—माताजी कहां हैं ?

साधुजी—वे भीतर की प्रयोगशाला में बैठी हुई हैं ।

मैंने सुशीला देवीजी से कहा—देवीजी ! मैं माताजी की चरण-रज लेकर जाना चाहता हूं । इसके लिये मुझे कल तक ठहरना पड़े तो भी ठहरना चाहता हूं।

साधुजी—तुम कल तक ठहरो तो यह खुशी की बात होगी । यों तुम चाहो तो तुम्हारी माता जी अभी यहां आ सकती हैं ।

मैं—नहीं मैं साधना में अन्तराय नहीं डालना चाहता ।

साधुजी ने हँसकर कहा—फिर भी तुम्हें उनकी चरणरज तो न मिलेगी क्योंकि नई दुनिया के साधु साध्वियों को चरणों में रज रखना जरूरी नहीं है।

हम सब हँस पड़े । फिर मैंने कहा-पुरानी दुनिया मे तो यह एक मुहावरा है ।

साधुजी--पुरानी दुनिया में धूलधूसरित हुए बिना कोई साधु न कहला सकता होगा ।

मैं—जी हां ! पुरानी दुनिया में साधु का धूलधूसरित और मैला कुचैला होना जरूरी है । नगा हो, या लम्बी लम्बी जटाएँ हों, या कपड़ों और शरीर से गंदा हो तब तो साधुता सौप-चास गुणी हो जाती हैं ।

साधुजी—समाज की जैसी मांग होती है वैसे ही साधु बनते हैं।

मैं—बिलकुल ठीक कहा आपने। पुरानी दुनिया के समाज ने कभी ऐसे वैज्ञानिकों को साधु नहीं माना जिनने मनुष्य को सुखी बनाने के लिये प्रयोग शालाओं में दिन रात तपस्या की, मनुष्य को अमूल्य वरदान दिये और इसके लिये प्राण भी गमाये। उस ने साधु माना उन्हें, जिनने समाज की आँख में धूल झोंकी, ढोंगों से अद्भुत रस पैदा किया, हीनकलाओं से रिझाया। समाज ने वेष देखा, अन्धश्रद्धा पूर्ण बातें सुनी, और साधुता का पद दे दिया। जो आदमी मूर्खों को चकमा देकर उन्हें अपनी तरफ खींच सकता है, और आज के कष्टों को भुलाकर अन्याय अत्याचारों पर उपेक्षा कराकर लोगों के दिल पर एक तरह का नशा चढ़ा सकता है वही साधु है महान साधु है। साधु की मुख्य शर्त मुफ्तखोरी, और दूसरों की सेवा के बारे में लापर्वाही है साथ ही उसे दंभी भी होना चाहिये।

साधुजी—पर ये लोग नंगे क्यों होते हैं? जटा क्यों रखते हैं! गंदे क्यों रहते हैं!

मैं—वीतरागता का ढोंग करने के लिये। वे यह बताना चाहते हैं कि हम समाज से एक चिन्दी भी नहीं लेना चाहते हैं। हालांकि चिन्दी के बदले वे तम्बू लेते हैं, ईंधन जलाते हैं, और भी नाना तरह के उपचार करते हैं।

साधुजी—खैर! अगर तम्बू आदि न लें तो भी वे समाज की कोई बचत नहीं करते! नग्न रहने से शरीर से इतनी गर्मी

निकलती है कि उसे पूरा करने के लिये साधारण खुराक से ड्योढ़ी खुराक लेना पड़ती है। खुराक के बढ़े खर्च के आगे कपड़े की बचत का क्या मूल्य है!

मैं—पर गुरुदेव, पुरानी दुनिया के लोग जानवर हैं जानवर, उन्हें साधुता के हिसाब का रत्तीभर भी ज्ञान नहीं। बस, वे तो इतने में ही उल्लू बन जाते हैं कि देखो तो अमुक साधु कपड़ा भी नहीं रखता, कितना कष्ट उठाता है, शरीर की सफाई की तरफ भी ध्यान नहीं रखता, जटाएँ बढ़ गई हैं, दुर्गंध आने लगी है। अगर कोई आसने लगाने में होश्यार हुआ, गवैया नचैया हुआ, तब तो उसकी साधुता आसमान छूती है, वह भगवान बन जाता है।

सुशीला—लोकहितोपयोगी असाधारण ज्ञान, सेवा, और कर्मठता से क्या कोई मतलब नहीं!

मैं—नहीं देवीजी, ज्ञान का वहां क्या काम! हां! ईश्वर मोक्ष योग परलोक आदि के नाम पर गप्पें हांकना आना चाहिये, नटियों की तरह मुँह फेरकर विरक्ति का ढोंग करते हुए दुनिया को रिझाने की कला आना चाहिये, बस! हो गई साधुता की सीमा समाप्त। लोकहितोपयोगी ज्ञान से, सेवा से, या कर्मठता से क्या मतलब! वहां कर्मठता पाप है, हरामखोरी पुण्य है।

सुशीला देवी मुसकराकर आश्चर्य से मुँह मटकाकर रह गईं!

मैंने कहा—आप हँसती क्या हैं देवीजी! आप अगर पुरानी दुनिया के साधुओं का नागड़धिन्ना देखेंगी तो क्रोध और ग्लानि से आप का बुरा हाल हो जायगा और उनके जाल में फँसी

हुई दुनिया की हैवानियत देखकर उसके साथ बात करने में भी आपको अपमान मालूम होगा।

साधुजी—सचमुच मनुष्य को बड़ी बुरी परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा है।

सुशीला—हम सब लोग क्या ऐसे ही लोगों की सन्तान हैं गुरुदेव!

साधुजी—एक दिन हमारे पुरखा बन्दर या बंदरों के भाई थे। धीरे धीरे हम इस अवस्था में आ पाये हैं।

सुशीला—तब तो सचमुच पुराने जमाने के गीत गाना एक तरह की मूर्खता ही है।

साधुजी—हां! पुराने जमाने के गीत गाना तो मूर्खता ही है पर जिन लोगों ने उस जमाने में भी मानव समाज को विवेकी, और मानवता का पुजारी बनाने की कोशिश की उनके गीत तो गाना चाहिये।

मैं—उनके व्यक्तित्व और उनकी विश्वहितैषिता के गीत गाये जा सकते हैं पर उनका अन्ध अनुकरण तो नहीं किया जा सकता।

साधुजी—कदापि नहीं। उनके जमाने में उनके कार्य मानवता के पथप्रदर्शक हो सकते हैं पर आज का जमाना उन कार्यों को पीछे छोड़ चुका है। तब उनका अनुकरण कैसे किया जा सकता है?

सुशीला—फिर पुराने महात्माओं के गीत गाने में कोई हर्ज नहीं बल्कि कृतज्ञता की दृष्टि से जरूरी भी है। पर जिन लोगों ने जमाने को आगे नहीं बढ़ाया किन्तु अपनी नाम-बड़ाई पूजा के

लिये या दूसरों की कमाई पर मौज उड़ाने के लिये समाज को बहकाया अन्धश्रद्धालु बनाया, कर्मठता को भुलाने के लिये देववाद की शराब पिलाई उनके नाम पर थूकना भी तो जरूरी ही है। जिस जनता ने सच्चे साधुओं को नहीं पहिचाना, किन्तु ढोंगी वंचक अकर्मण्य वेषधारियों का सन्मान किया उस पर धिक्कार करना भी तो जरूरी है।

इतने में आईं माताजी। साधुजी ने उन्हें देखते ही कहा— आइये प्रतिमाजी, आपका एक भक्त न जाने कितनी देर से आपके चरण-रज की बाट देख रहा है।

साध्वीजी ने हँसते हँसते कहा—तब उसे चरणों में रज लाने के लिये कहीं बाहर जाना पड़ेगा। मकान में जो रज है नहीं।

'मकान में तो क्या आपकी इस नई दुनिया में भी रज नहीं है माताजी, पर पुरानी दुनिया का बुद्धू नई दुनिया की भाषा कहां से लाये' यह कहकर मैंने माताजी के चरणों पर सिर लगाकर बार बार दोनों पैरों का चुम्बन लिया। और चुम्बन लेकर कहा—रज नहीं तो थी बहुत मैल अब पैरों में आ गया होगा माताजी।

माताजी ने जोर से मेरी पीठ पर दो धप्पे जमाये और इस सौभाग्य से मैं कृतकृत्य हो गया।

यद्यपि माता जी के दर्शन हो चुके थे पर साधु साध्वी जी के आग्रह से हम लोग रात भर वहां ठहरे। और प्रयोगशाला में जब साधु साध्वी जी के प्रयोग देखे तब मैंने पूरी तरह समझा कि दुनिया में सच्चे साधुओं की सेवा क्या रंग ला सकती है।

पुरानी दुनिया में भी वैज्ञानिक हैं पर उन में से अधिकांश

राज्याधिकारियों और पूंजीपतियों के गुलाम बनकर मानव जाति के संहार की तैयारी करते रहते हैं वे एक तरह से बुद्धिजीवी कुत्ते हैं।

पर नई दुनिया में साधुता और वैज्ञानिकता का समन्वय हुआ है इसीलिये नई दुनिया नई दुनिया कहलाने लायक बन सकी है।

(१७) वृद्ध नगर में

दूसरे दिन सबेरे साधु साध्वीजी को प्रणाम कर हम लोग विदा हुए और दुपहर को भोजन के समय तक वृद्ध नगर पहुँच गये। यहां दुमंजिले मकान कम थे पर थे सब पक्के। वृद्धों को चढ़ने उतरने की तकलीफ से बचाने के लिये एक मंजिल के ही मकान बनाये गये थे। यहां एक नई बात देखी। जब से नई दुनिया में आया था किसी घर में नौकर चाकर दिखाई नहीं दिये थे। अस्पताल में जरूर परिचर्या करने वाले थे पर बाहर कहीं नहीं। पर यहां नौकर चाकर थे। वृद्धों की सेवा के लिये चार पांच वृद्धों के पीछे एक नौकर रहता था। सब का खर्च सरकार उठाती थी। वृद्धों को भोजन कराने कपडे धोने आदि सब तरह की परिचर्या का इन्तजाम था। हजारों वृद्ध–जिनकी उम्र कम से कम ११० वर्ष और अधिक से अधिक २०० वर्ष थी–इस नगर में रहते थे। वृद्धों के सम्बन्धी मिलने के लिये नगर आना चाहें तो एक विशाल अतिथि सदन था। हम लोग इसी अतिथि सदन में ठहरे हुए थे।

मैं ऐसे वृद्धों से मिलना चाहता था जो क्रान्ति के पहिले

पैदा हुए थे और जिनने अपनी आंखों से क्रान्ति देखी थी। क्रान्ति के पहिले के जीवन का भी जिन्हें अनुभव था। भोजन करने के बाद हम लोग ऐसे ही लोगों से मिलने में लगे।

१—सब से पहिले हम जिन महाशय के पास पहुँचे वे क्रान्ति के पहिले एक नवाब थे। उन्हीं के बगल के कमरे में एक सज्जन और थे जो क्रान्ति के पहिले एक हिंदू राजा थे। अब वे न हिंदू थे न मुसलमान, आदमी थे। दोनों एक ही भवन में रहते थे। इसके सिवाय उसी भवन में तीन वृद्ध और थे। मैंने राजा और नवाब से निवेदन किया—नई दुनिया और पुरानी दुनिया के बारे में मुझे आप से कुछ सुनने की इच्छा है। आप पुरानी दुनिया में सुखी थे या नई दुनिया में ?

नवाब हँसे। फिर बोले—सुख भीतर की चीज है और इस दृष्टि से नई दुनिया में जितना सुख हमें मिला उतना पुरानी दुनिया में एक दिन भी नहीं मिला। पुरानी दुनिया में घमंड के सिवाय और कोई सुख नहीं था। मेरे पास पचास बेगमें थीं पर उन में से कोई भी मुझसे प्यार नहीं करती थी। सब ने प्यार के लिये अलग पात्र चुन लिये थे। मुझे उन पर नजर रखना पड़ती थी। और कभी कभी इतना सन्ताप होता था कि क्या कहूं। सब मेरे दुश्मन थे। एक बेटा दूसरे बेटे को और सब बेटे मुझे मार डालना चाहते थे। क्योंकि मेरी जिन्दगी उनके अधिकार में बाधक थी। बीमारी में मैं अपने को बिलकुल अनाथ अनुभव करता था।

नौकर चाकर बेचारे पूरी तरह आज्ञापालन करते थे फिर भी मुझे दिन रात उन पर चिढ़ पैदा होती थी। मेरा क्रोध गजब

का था पर यह तो तुम अच्छी तरह समझ सकते हो कि क्रोध कोई सुख नहीं है।

लाखों आदमियों की कमाई मैं खा जाता था पर लाखों को भूखों मारकर मैं जरा भी सुखी नहीं था। मेरा विलास मेरे दुःख भुलाने का जरिया था।

मैं—पर आप तो मुसलमान थे, इसलाम में तो चार से अधिक पत्नियाँ रखने की मनाई थी। और वह भी उस हालत में जब कि चारों से एक सा व्यवहार किया जाय। इसके सिवाय इसलाम में तो अमीर गरीब में ऐसा भेद नहीं है, हजरत मुहम्मद हजरत उमर आदि ने बड़ी सादी जिंदगी बिताई थी।

मेरी बात सुनकर नवाब ने नाक सिकोड़कर कहा—कैसे मुसलमान। जो लोग गरीबों की कमाई मुफ्त में खाते हैं वे न हिंदू होते हैं न मुसलमान। हम लोगों को तो मजहब अपना उल्लू सीधा करने के लिये होता था। मजहब के नाम पर हम लोगों को सिखाते थे कि अल्लाह की मरजी इसी में है कि हम तुम्हारे ऊपर शासन करें। तुम मिहनत करके भूखों मरो और हम हराम में चैन करें यह सब अल्लाह की मर्जी है। इसके लिये हम प्रजा की लूटी हुई संपत्ति से बड़े बड़े अफसर नियुक्त करते थे वे हमारे गीत गाते थे, मौलवियों को वेतन देते थे मसजिद में दान देते थे कभी कभी नमाज पढ़ने चले जाते थे। मजहब का नशा लोगों में चढ़ा रहे इसकी पूरी कोशिश करते थे; प्रजा की लूट का एकाध टुकड़ा धर्मस्थानों में फेंक देने से अल्लाह और ईमान सब कुछ पा जाते थे। नई दुनिया ने हमें सिखाया कि हम कैसे शैतान थे, पर दुनिया को

नरक बनाकर और उसे भरपूर लूट कर भी दुःखी नहीं थे।

२-राजा साहब ने भी नवाब साहब के वक्तव्य का समर्थन किया। बोले-बिलकुल ठीक कहा नवाब भाई ने। ठीक यही दशा मेरी थी। हम लोग धार्मिक और पार्मिक [illegible] धर्मावतार धर्म-रक्षक आदि की पदवियाँ लगाया करते थे। [illegible] को लूटते थे और लूट का पैसा अपने विलास में और प्रजा को मुकाबिल रखने में खर्च करते थे। हमारे पूर्वजों ने पहिले से ही शास्त्रों में ब्राह्मणों से लिखवा दिया था कि राजा विष्णु का अवतार होता है (नाविष्णुः पृथिवीपतिः)। इस तरह हम लोग विलास के कीड़े, घमंड के पुतले और शैतानियत के अवतार थे पर सुखी न थे। हम लोग चैन से नींद भी न ले पाते थे। जब क्रान्ति हुई तब काफी बुरा लगा लेकिन पांच वर्ष में ही समझ गये कि पहिले की अपेक्षा अब अधिक चैन में हैं।

नई दुनिया में हम लोगों ने लम्बा समय बिताया है। उस समय हमें चैन से नींद आई, स्वास्थ्य खूब अच्छा रहा, सच्चे मित्र और स्नेही मिले, स्वतन्त्रता से घूमने मिला। पुरानी दुनिया में हम लोगों को लूटते थे और हमें लूटने के लिये—उल्लू बनाने के लिये—चारों तरफ से चालाक लोग घेरे रहते थे। दिन रात चिन्ता रहती थी सच्चा प्रेमी कोई न था। चापलूस और धोखेबाज हमें घेरे रहते थे। अब हम पूर्ण सन्तुष्ट हैं। नई दुनिया की बदौलत हम इतनी लम्बी आयु भी पा सके हैं।

मुझे उनके वक्तव्य से आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। इसके बाद हम घर घर जाकर बारी बारी से अनेक व्यक्तियों से मिले।

हमने देखा [illegible] में वहां ऐसे वृद्ध थे जो क्रान्ति के पहिले जवानी देख चुके थे। हमने सभी श्रेणियों के वृद्धों से बातचीत की और सभी ने नई दुनिया की प्रशंसा की और पुरानी दुनिया के दुःख सुनाये।

३—एक सेठ जी थे। बोले—मैं जैन था लाखों की जायदाद थी मेरी, सट्टा करता था। पर शान्ति इतनी ही थी जितनी लड़ाई में एक सैनिक को मिल सकती है। हर समय यही चिंता थी कि न जाने कहां से आक्रमण हो जाय और मिट जाऊं। आखिर सैकड़ों को मिटा कर मैं बना था इसी तरह मुझे भी कोई मिटा सकता था [illegible] सकते थे इसी कारण मुझे रात रात नींद न आती थी।

मैंने कहा—आप तो अपरिग्रह के गीत गाते होंगे और जिन महात्मा की आप पूजा करते होंगे वे तो बिलकुल निष्परिग्रह और दिगम्बर थे।

सेठ जी—थे और मैं उनके गीत भी गाता था क्योंकि इनसे मुझे वाहवाही मिलती थी और [illegible] उसमें कोई नुकसान न था। पर एक तरफ लोग दिगम्बरता के गीत गाते थे दूसरी तरफ यह भी कहते थे कि पुण्यात्मा ही सम्पत्ति के स्वामी होते हैं। इसीलिये मैंने सोचा जैसे भी बने सम्पत्ति इकट्ठी करो और पुण्यात्मा बनो। इस प्रकार मैं पुण्यात्मा बना या कहलाया। तब जैसे गुड़ के चारों तरफ [illegible] आ जाती हैं उसी तरह पंडितों ने मुझे घेरा। [illegible] इनकी [illegible] मुझे [illegible] मैंने टुकड़े [illegible] मुझे इनकी [illegible] पर यह भी

मन हँसना आता था। पर धीरे धीरे मुझे रोना भी आने लगा। मुझे मालूम हुआ कि ये भीतर ही भीतर मुझे उल्लू समझते हैं मन में न मेरा आदर है न मुझसे प्रेम। मुझे बड़ी ग्लानि हुई, पर [illegible] करता। पहिलों के [illegible] में मुझे [illegible] था, और सदा युद्ध करते करते थक गया था। इस तरह [illegible] दिन [illegible] में ऊब गया था। चापलूसी का व्यसन जरूर लग गया था इसलिये ग्लानि होते हुए भी नहीं छूटता था। पर इतने में तो क्रान्ति हुई। मैं घबराया, मैंने क्रान्ति का विरोध किया पर यह तो सूर्य को उगता जानकर उल्लू के द्वारा गाली देने के समान था। खैर! क्रान्ति हुई। दो चार वर्ष मुझे बड़ी बेचैनी रही। पर पीछे मैंने समझा कि सच्चा सुख अब दुनिया में हो है। मैं निश्चिन्तता से सोता था। आराम से रहता था। अब मुझे न आत्मवञ्चना करना पड़ती थी न पर वंचना।

४-एक जमींदार बोले—हम लोग छोटे-मोटे राजा थे [illegible]। पर राजा की तरह जनता की सेवा का भार बिलकुल न होता पर अत्याचार और प्रपंच राजा से ज्यादः होता था। किसानों [illegible] मैं खून चूसता था, उन पर मनमानी करता था। कानून हमारे पक्ष में था। फिर भी मुझे चैन नहीं थी। दो सशस्त्र जवान जब तक साथ में न हों तब तक घर से बाहर न निकल सकता था। इतने पर भी मेरे पिता का खून किया गया था और बड़े भाई ऐसे घायल हुए थे कि जिन्दगी भर खाट पर पड़े रहे। अगर बीच में क्रान्ति न होती तो मेरी भी किसी दिन यही दशा होती। एक तरफ इतना भयभीत जीवन था दूसरी तरफ जनता को कंगाल बना कर भी हम कंगाल रहते थे। व्यभिचार शराब तथा

ऐसे ही कामों में सम्पत्ति और स्वास्थ्य बरबाद हो जाता था। सन्तान को हम आदमी तो बना ही नहीं सकते थे। सन्तान तो जन्म से उद्दंड अहंकारपूर्ण स्वच्छन्द और विलासी होती थी। भला वह क्या आदमी बन सकती थी। कौटुंबिक अशान्ति का तो कहना ही क्या है। कभी कभी मुझे लगता था मैं वैभव में नहीं नरक में हूं। सौभाग्य से क्रान्ति हुई, शुरु में तो मुझे उसका तेज सहन न हुआ पर पीछे से वह सह्य हुई। और बाद में मुझे कल्याणकर मालूम हुई।

५—एक थे पंडित जी, बोले—पंडित की जिंदगी का क्या पूछते हो! सोचता हूं पंडितजी से जानवर अच्छा। उसे शारीरिक कष्ट होता है पर मानसिक नहीं। मैं था तो विद्वान, पर ऐसे मूर्ख सेठों के सामने हाथ जोड़ना पड़ते थे, जिनके साथ—अगर उनके पास धन न होता तो—बात करने में भी मुझे अपमान मालूम होता। जानता था—सब ढकोसला है, पर समाज को उल्लू बनाने के लिये और उल्लू समाज में सेठजी को पुजाने के लिये उनके गीत गाता था। जानता था कि बेईमानी का अत्याचार करकर सेठजी ने सम्पत्ति जोड़ी है पर उनके फेंके हुए टुकड़ों के लिये कहता था सेठजी पुण्यात्मा हैं। इन्हीं टुकड़ों के कारण सत्य नहीं बोल सकता था। हजारों वर्ष पहिले धर्म के नाम पर जो बातें फैलाई गई थीं उनके खंडित हो जानेपर भी—अहितकर सिद्ध होजाने पर भी उन्हीं से चिपटा रहता था क्योंकि तभी, रोटी सुरक्षित रह सकती थी और तभी इज्जत। पर कैसी हरामी जिन्दगी थी! कितनी दीनता, कितनी वंचना, कितना अन्तर्क्लेश सहना पड़ता था

मुझे, और इसनेपर भी रोटी की तरफ से निराकुलता नहीं। सच बोलने के लिये छटपटाता था पर नहीं बोल पाता था। सोचता था कहाँ जाऊं क्या करूं ? पर कुछ रास्ता नहीं सूझता था। इतने में क्रांति हुई। पहिले तो मैं घबराया कि अब हमारा क्या होगा ? हम तो भूखों मर जायँगे। पर कुछ दिन बाद ही पता लग गया कि नई दुनिया में अगर कोई भूखों मरे तो वह राज्य का बड़ा भारी कलंक कहलायगा। नई दुनिया में मैं बड़े मजे में रहा और एक दार्शनिक के रूप में मैं प्रसिद्ध हुआ। मेरा दर्शन मुर्दों का दर्शन नहीं, जिन्दों का दर्शन था।

६—एक सज्जन बोले—मेरे पास हजार एकड़ जमीन थी, पचास बैल थे, पचास साठ नौकर, पर सब चोर ही चोर थे। थोड़ी ही गफलत हुई कि लुटा। आये दिन एक न एक झगड़ा सिर पर सवार रहता था। मुनीम और मैनेजर भी मैंने रक्खे थे पर सब बेईमान महाचोर। दिन रात चिंता और बेचैनी रहती थी। गाली दे दे के थक जाता था। और खेती भी बर्बाद होती थी। नई दुनिया आने पर जब मेरी जमीन सार्वजनिक हो गई तब पहिले की अपेक्षा सात आठ गुणा उपज होने लगी। उतनी जमीन में। मैं बेहिसाब जमीन का मालिक बना था। इससे जमीन बर्बाद हो रही थी, मजूर कंगाल बन रहे थे, मैं दिन रात बेचैन रहता था। और लड़के मुफ्तखोर विलासी उद्धत और लापर्वाह हो गये थे। नई दुनिया ने सब का उद्धार कर दिया।

७—मैं साहूकारी करता था, हरामी का धंधा। पर इसमें भी चैन कहां ! डूबती रकमों के मारे रात में नींद न आती थी। आये

दिन कचहरियों में खड़ा रहना पड़ता था। जिसके साथ सख्ती की कि वह दुश्मन हो गया। इस प्रकार सैकड़ों दुश्मन हो गये थे। भीतर ही भीतर सब मुझे शाप दिया करते थे। नई दुनिया आई तो मैं एक सरकारी बैंक में कार्यकर्ता बन गया। नई दुनिया में जो वैज्ञानिक तरक्की हुई थी उससे जीवन के सुभीते मुझ पहिले से भी अधिक मिले। बस छः घंटे काम करना और बाकी समय मौज करना। न रकम डूबने की चिन्ता, न बुढ़ापे की चिन्ता, न बच्चों के पालन पोषण और बिगड़ने की चिन्ता। बस! आनन्द ही आनन्द हो गया।

८—मैं एक पुलिस का सिपाही था। अफसरों को झुकझुक कर सलाम करने वाला और नागरिकों के सामने ऐंठ कर चलने वाला। सब मुझ से डरते थे पर कोई प्रेम न करता था, न कोई विश्वास करता था। मैं इस धुन में रहता था, सब मेरी धाक रहते थे। क्रान्ति आई, मैंने क्रान्ति का विरोध किया। पुरानी सरकार का, जिसे मैं अब डाकुओं का गिरोह ही कहूंगा, साथ दिया। पर क्रांति तो हुई, मैं घबराया पर पीछे मालूम हुआ यह तो स्वर्ग आया है। नई दुनिया में भी मैं सिपाही बना। रहने के लिये अच्छा घर मिला, भरपेट खाने लायक वेतन मिला। अपने बाल-बच्चों को भी भरपूर शिक्षा देने के साधन मिले और सभी का प्रेम-पात्र और विश्वसनीय बना।

९—हम लोग सैनिक थे, बलिदान के बकरे। खिलापिला कर मोटे ताजे किये जाते थे और शाक भाजी की तरह कटवा दिये जाते थे। जब देखो तब सिर पर मौत सवार, पत्नी की आंखों में

आशंका और आंसू। हम लोग कभी तो चिन्तित और दुःखी या कभी शराबी की तरह उन्मत्त असभ्य और लापर्वाह। देश देश में इसी तरह हमारे भाई बन्धु हम से अलग किये जाते थे हम लोगों का जीवन जंगली जानवरों का जीवन था। हमारे पीछे दुनिया की आधी आमदनी बर्बाद होती थी। दूसरे लोग कुछ निर्माण करने के लिये वेतन लेते हैं हम विनाश करने के लिये वेतन लेते थे। लड़ाई में कैसे कैसे सुन्दर शहर और देश बर्बाद कर देते थे किस तरह अरबों रुपयों की लागत के तिनके की तरह के जहाज समुद्र में डुबा देते थे, किस तरह बच्चों बूढ़ों और विधायक कार्य करने वाले नागरिकों को मौत के घाट उतार देते थे किस प्रकार खाने की सामग्री बर्बाद कर देते थे, कपड़ों आदि के कारखाने नष्ट कर देते थे, नाश करने के साधन जुटाने के लिये किस प्रकार दिन रात एक कर देते थे इसकी याद आते ही आज रोंगटे खड़े होते हैं। इसलिये नई दुनिया का स्वागत सब से अधिक किया हम लोगों ने। अब दुनिया में कहीं सेनाएँ नहीं हैं, कहीं युद्ध नहीं होते, मनुष्य की सारी शक्ति निर्माण के काम में लगी हुई है, और लोगों ने भी बलि के बकरे की मौत से बचकर विधायक कार्य में जिंदगी गुजारी है। यह सब नई दुनिया की बदौलत।

१०—मैं किसान था। चार एकड़ जमीन मेरे पास थी, पन्द्रह बीस एकड़ जमीन भाड़े से ले लेता था। पर कभी भर पेट रोटी नहीं मिली। मेरे पास इतनी पूंजी न थी कि मैं अच्छा खाद ले सकता; अच्छा बीज ला सकता, जमीन को अच्छी तरह तैयार

कर सकता । और अगर कुछ करने की ताकत होती भी तो भाड़े की जमीन को सुधारने से क्या फायदा था । जमीन सुधारते ही जमीन का मालिक किसी दूसरे को जमीन दे देता, मनचाहा भाव मांगने लगता, इसलिये किसी तरह बीज डाल देते और जो मिले उसी से गुजर करता । गुजर क्या थी किसी तरह जिन्दा रहने के लिये घास सरीखा मुट्ठी भर अन्न पेट पापी को दे देना था । सरकार की तरफ से मदद या सलाह तो मिल ही कहां सकती थी । अगर क्रान्ति न होती तो इसी तरह जानवर बने रह कर जिन्दगी पूरी हो गई होती । पर क्रान्ति हो गई । मेरे भाग्य खुल गये । मैंने लम्बी जिंदगी तक भर पेट खाया, अच्छे कपड़े पहिने, बालबच्चों को विद्वान होते देखा, श्रीमानों के महल सरीखे मकान में रहा, गांव की पचायत का सदस्य बना, मेरा पुनर्जन्म हो गया ।

११—मैं मजदूर था । आदमी नहीं सिर्फ मशीन का पुर्जा । जिन्दगी का कोई मूल्य न था । मेरी मिहनत की कमाई पूंजीपति खा जाते थे और मुझे नीची नजर से देखते थे । मैं इतने गंदे मकान में रहता था कि श्रीमानों का अस्तबल भी मेरे लिये मंदिर की तरह था । पर क्राति के बाद मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कारखाना मेरा है, मैं उस में साझेदार हूं । इसलिये काम में आनन्द आने लगा उतने ही समय में दूना काम करने लगा । सुन्दर हवादार और आराम देने वाला स्वच्छ मकान रहने को मिला ही, साथ ही मैं पढ़लिख कर होश्यार भी हो गया । दुनिया क्या है राज्य क्या है समाज क्या है सब समझने लगा । किसी को गरीब किये बिना अमीर बना । पुराने जमाने में भी कोई कोई गरीब अमीर बन

जाता था, पर इसके लिये उसे अनेक छलछिद्र करने पड़ते थे खुशामद और विश्वासघात करना पड़ता था, लोगों की बेबसी का लाभ उठाना पड़ता था, इस प्रकार दूसरे की कब्र पर अपना महल बनाना पड़ता था। जब कि नई दुनिया में सामूहिक उन्नति हुई दूसरे को गिराये बिना सब सुखी हुए, सब अमीर बने। पहिले तो मैं यही समझता था कि अपने पहिले जन्म के पाप किया था सो भोगना पड़ता है पर पीछे समझ में आ गया कि ऐसे सिद्धांतों के प्रचार में उन्हीं श्रीमानों का अधिक हाथ है जो लूटकर मोटे ताजे बन गये हैं, आदमी की अपनी अन्ध स्वार्थलिप्सा के कारण आदमी का दुर्भाग्य बना हुआ है। मनुष्य चाहे तो प्रयत्न से सब कुछ पा सकता है, और सामूहिक प्रयत्न से और शोषण बन्द कर देने से सभी की उन्नति हो सकती है।

१२—मैं रानी थी। बाहर वालों के लिये बड़े ऊंचे पद पर थी पर थी गुलाम से बदतर। महीनों राजा जी के दर्शन न होते थे फिर भी मेरा शीलभंग न हो जाय इसके लिये चुपचाप पहिरेदार और पहिरेदारिनें नियुक्त थीं। कहने को वे मेरी दासियाँ थीं पर वास्तव में थीं वे मेरे लिये पुलिस। उनकी झूठी रिपोर्ट से भी मेरे प्राण जा सकते थे। राजमहल में मेरे लिये कोई न्याय न था। और थीं चारों तरफ सौतें। क्या बुरी दशा थी! नारी नारी की दुश्मन बन जाती थी। हम सब की सब मर जायँ तो राजा का कोई नुकसान नहीं, पर अगर राजा मरे तो हम सब की सब विधवा। बेटियों के लिये भी अपनी दुश्मन के समान किसी सौत के लड़के की कृपापात्र। एक कैकेयी ने आत्मरक्षा के लिये एक राम के साथ

अत्याचार किया कि रामायण बन गई और कैकेयी राक्षसी के रूप में चित्रित कर दी गई। पर हजारों वर्षों से कितनी कैकेयियाँ पिसती रहीं हैं इसके लिये एक भी दशरथ या एक भी राम को राक्षस नहीं बनना पड़ा। दिन रात होने वाले हजारों लाखों नारियों के इस उत्पीड़न को समाज ने पुरुष का पुण्य या सौभाग्य कहा। नई दुनिया ने मेरा रानीपन छीन लिया और सच्चे नागरिक का महान पद दिया। तब मैं सिर उठा कर चल सकी, अपने पैरों पर खड़ी हो सकी, और सच्चे अधिकार के साथ आदमी की तरह अपना निर्वाह कर सकी।

१३—मैं सेठानी थी। सुन्दर होने से सेठजी का प्रेम भी था मुझ पर, इतने पर भी सेठजी की नाराजी का अर्थ समझती थी मैं। वह प्रेमी का रूठना नहीं होता था पर मालिक की फटकार होती थी। सुन्दर न होती तो सौत तैयार थी। जब बहुत दिन तक सन्तान न हुई तो मेरे सामने ही बड़ी धृष्टता के साथ सौत लाने की बात चलने लगी क्योंकि मैं बच्चे पैदा करने की मशीन थी। बच्चा पैदा न हुआ कि मशीन बेकार हुई अब दूसरी मशीन आना ही चाहिये। इस काम में सेठजी ही धृष्ट हों सो बात नहीं, किंतु मेरी सासू भी धृष्ट थीं। एक नारी दूसरी नारी के कष्टों की तरफ से कितनी बेखबर थी, नारी का कितना पतन हुआ था यह देख कर आज भी मुझे आश्चर्य होता है पर विधाता के विधान की तरह चुपचाप सहन किये बिना गुजर नहीं थी। करती भी क्या? मेरे हाथ में था क्या? कमा कर कुछ खा नहीं सकती थी, एक मजदूरिन के बराबर भी न कमा सकती थी। मेरी

था मुझ सरीखी सेठानियों की इस विवशता का पूरा उपयोग कौटु-म्बिक और सामाजिक वातावरण में होता था ! धर्मशास्त्र सिखाते थे कि पति परमेश्वर है पर पत्नी वास्तव में पत्नी नहीं है—वह परमेश्वरी नहीं है—दासी है। और धर्मशास्त्र यह न सिखाते तो भी समाज में नारी की स्थिति ही ऐसी ही विकट थी कि पति को पर-मेश्वर माने बिना उसकी गुजर ही नहीं थी। प्रेम से परमेश्वर नहीं, किन्तु विवशता से परमेश्वर। मैं सुन्दर थी इसलिये कभी कभी मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं रूपाजीवा हूं। रूप ही मेरी जीविका है। रूपाजीवा वेश्या को कहते हैं पर जहां तक रूप और जीविका का सवाल है प्रायः सभी स्त्रियाँ— खासकर रानियाँ सेठानियाँ आदि—रूपाजीवा थीं। कवियों ने साफ शब्दों में कहदिया था कि 'सौन्दर्यधनाः स्त्रियः' अर्थात् स्त्रियों का धन सौंदर्य है। बस ! सौंदर्य बेचा करो और खाया करो। यह तो थी मेरी मानसिक दुनिया। शारीरिक दुनिया यह थी कि बारह महिना एक न एक बिमारी की शिकार। मुझ से किसी को यह पूछने की जरूरत न थी कि, तबियत कैसी है सिर्फ यही पूछने की जरूरत थी कि आज कल कौनसी बीमारी चल रही है ? आखिर मैं सेठानी थी, खुली हवा में जा नहीं सकती थी, और बहुत दिन के आलसी जीवन से हाथों में काम करने की ताकात भी नहीं थी। फिर स्वास्थ्य कहां से रहता। मैं सेठानी थी इसलिये हर हालत में किसी न किसी के पल्ले बँधी रह सकती थी पर स्वास्थ्य तो सेठानी नहीं था जो हर हालत में मेरे शरीर के पल्ले पड़ा रहता।

फिर भी जब क्रान्ति हुई तब मैं घबराई। और इसमें सन्देह नहीं कि एक दो वर्ष मुझे काफी कष्ट मालूम हुआ। लेकिन बाद में मैंने गौरव और स्वास्थ्य का अनुभव किया। मैं दासी से पत्नी बनी। बीमारियाँ भागीं, मैं खुली हवा में खुले वातावरण में पहुंची मैंने देखा है अपनी सखियों को। पहिले वे इस बात से चिन्तित रहती थीं कि सन्तान न होगी तो सौत आ जायगी या बुढ़ापे में कौन सहारा देगा, पर नई दुनिया में उनको इसकी जरा भी चिन्ता न रही। कुछ दिन बाद ही मैंने समझ लिया कि सेठानी की लाश जल गई और उसके स्थान पर जीवित नारीत्व आ गया।

१४— मैं थी एक मजदूरिन। आठ नव घंटे मजदूरी करनी थी, इसके सिवाय घर पर रोटी बनाना बर्तन मलना कपड़े धोना साफ-सफाई करना तथा बच्चे का लालन पालन करना। तब कहीं चिथड़े पहिनने को और घास सरीखे टिक्कड़ खाने को मिलते थे सोचती—अगर गाय होती तो कितना अच्छा था। दूध देती और घास चरती। अगर बैल भी होती तो भी अच्छी रहती। दिन में सात आठ घंटे जोती जाती पर रातभर तो आराम में रहती। सच-मुच ऐसा ही जीवन था मेरा, जिससे पशुओं से भी ईर्ष्या होती थी। पर क्रांति होने पर कुछ समय में तो मैं रानी हो गई सिर्फ साढे छः घंटा काम करना पड़ता था। रोटी बनी बनाई मिलती थी, रहने को महल सरीखा मकान था। किसी को हुजूर या सरकार कहने की जरूरत नहीं थी। किसी सेठानी के वस्त्राभूषण देखकर न अपना जी जलाना पड़ता था न अपने भाग्य पर रोना पड़ता था। मेरे कपड़े साफ थे। कामपर जाते समय बच्चों के

लालन पालन के लिये धाय थी उनके शिक्षण का प्रबन्ध था। मैं पढलिखकर होश्यार बन गई थी, गाव की पंचायत में जाकर बोलती थी। इस गौरव की तो पुरानी दुनिया में मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी। नई दुनिया ने मुझे क्या दिया इसके उत्तर मे यही कहती हूं कि नई दुनिया ने मुझ क्या नहीं दिया?"

१५ - मैं वेश्या थी। समाज के अत्याचारों की शिकार। यों मै बड़े घर की पुत्री थी और बड़े घर की वधू भी। पर विधवा हो जाने पर देवर ने प्रेम में फसाया। और जब गर्भ रह गया तब व्यभिचारिणी कहकर घर से निकाल दिया। 'इस प्रकार मेरा सौन्दर्य भी लुटा और जिन्दगी भर के बोझ से, छुट्टी भी पाई, साथ ही मेरे पास जो कुछ थोड़ा बहुत धन था वह भी हथया लिया। बस, अब सौन्दर्य ही मेरा धन था इसलिये गुंडों तथा नराधमों को वही बेचकर पेट पालने लगी। कवियों ने वेश्या का नाम विला-सिनी भी रक्खा है। पर बाहरे विलास! जानवरों को रोज के रोज शरीर बेचना भी विलास है! ये कवि वेश्या होते तो जानते कि वेश्यावृत्ति का विलास क्या चीज है! पर यह नरक भी कहां सुरक्षित था रात के चौथे पहर जब गुंडों से छुट्टी पाती थी तब एक भयंकर चिन्ता सवार हो जाती थी। सोचती थी—ये तो चार दिन की जवानी के दिन हैं, पर जवानी निकल जाने के बाद! बस! सोचते ही चक्कर आ जाता था। समाज के ही पाप से समाज से तिरस्कृत और वेदनाओं से भरा हुआ यह नारकी जीवन, और वह भी सुरक्षित नहीं। अन्त में बीमारियों का घर यह शरीर भीख मांगता हुआ किसी गली-कूचे में प्राण छोड़ेगा!

अगर क्रान्ति न हुई होती तो मेरी यही दशा होती। पर क्रान्ति होते ही मुझे वेश्या जीवन से छुट्टी मिली, समाज में सन्मान मिला, और बुढ़ापे में यह वृद्धनगर का स्वर्ग मिला।

१६ मैं सिनेमा की अभिनेत्री थी। खूब पैसा मिलता था और नाम भी चमकता था। पर थी विलास की पुतली। आमदनी से खर्च बढ़ने की जब चाहे नौबत आती थी। और प्रसिद्धि बनाये रखने के लिये सिनेमा मालिकों और संचालकों की सब इच्छाएँ पूरी करना पड़ती थीं। नाम और आमदनी होने पर भी भविष्य अन्धकारमय था। जानती थी, जवानी निकल जाने पर मालिकों के द्वारा उसी तरह फेंक दी जाऊँगी जिस तरह गन्ने का रस चूस लेने पर लोग छूछ फेंक देते हैं। कितने प्रशंसक थे मेरे पर प्रेमी एक भी नहीं

पर नई दुनिया में मैं भविष्य की चिन्ताओं से मुक्त हुई, अब किसी मालिक की वासना का शिकार होने का सवाल न रहा।

१७—मैं साध्वी थी। विधवा हो जाने के बाद जब जीवन में कुछ रस न रहा तब साध्वी बन गई। पर साधु लोगों को ठगने के सिवाय किसी काम की नहीं। कहने को साधु-जगत् दुनिया से अलग कहलाता था पर सच बात तो यह है कि वह और भी गंदा संसार बन जाता था। जब क्रान्ति हुई तब हम लोगों ने सोचा अब प्रतिष्ठा न रहेगी, न मुफ्त की रोटियाँ खाने को मिलेंगी। कुछ अच्छे साधुओं ने कहा—हमें क्रान्ति का स्वागत करना चाहिये। लोकहित के लिये ही हमारी साधुता थी पर जब क्रान्ति से इतना लोकहित हो रहा है कि हमारे उपदेशों से हम

अनेक जन्मों में भी नहीं कर सकते तब क्यों न हम क्रान्ति का स्वागत करें। हम वेषधारी नहीं किन्तु सच्चे साधु बनेंगे। मुझे यह बात जँची और क्रान्ति का स्वागत किया। इसके बाद मैंने शिक्षण द्वारा समाज की काफी सेवा की अब मुझे भुक्खड़ कहने वाला कोई न रहा। और व्यर्थ के कष्ट और आडम्बर से भी बची।

इस प्रकार मैं जिन जिन लोगों से मिला सभी सभी ने नये संसार की तारीफ की। वृद्ध नगर में आकर मैंने नये ससार का महत्त्व और अच्छी तरह से समझा।

(१८) विश्व भ्रमण

वृद्ध नगर तक श्री सुशीला देवी श्री प्रसन्न कुमार जी आदि साथ थे। अब मैंने यहीं उन से विदा ली। मैंने साश्रु नयनों से गद्गद स्वर में कहा—आप लोगों के यहां मैं इस प्रकार रहा कि मैं पुरानी दुनिया में श्रीमान होता तो भी इतना आराम और इतना प्रेम घर में भी न पाता। आप लोगों से विदा लेते हुए मुझे जो वेदना हो रही है उसे मैं ही समझता हूं।

सुशीला देवी और प्रसन्नकुमार जी की आंखों में भी आंसू आ गये। इतने दिनों की सेवा और खर्च के बदले उनने कुछ भी न लिया। बल्कि जब मैं देने लगा तो झिड़क दिया। खैर! उन से विदा लेकर मैंने विश्व भ्रमण किया।

देखा—दुनिया की कायापलट हो गई है। आष्ट्रेलिया में करीब चालीस करोड़ आदमी बस गये हैं। वहां चीन जापान हिन्दुस्तान ब्रह्मदेश स्याम जावा सुमात्रा आदि के बहुत से निवासी रहने लगे हैं आफ्रिका की जातियाँ भी वहां पहुँची है। गोरी

जातियाँ तो पहिले थी ही अब और पहुंच गई हैं, पर जातिभेद कहीं नहीं है। सब में परस्पर विवाह सम्बन्ध होता है। वही मानव भाषा यहां भी बोली जाती है जो हिन्दुस्तान में बोली जाती है। अब सारे संसार की एक ही भाषा है और एक ही लिपि।

आफ्रिका में जब पहुंचा तो एक तरफ जहां वहां के बड़े बड़े जंगल साफ हो गये थे वहां सहारा के मरुस्थल का कहीं पता न था। वहां अच्छे अच्छे शहर बस गये थे। सड़कें थीं। चारों तरफ हरियाली थी। सारा आफ्रिका आज एक राष्ट्र था। एक ही जाति एक ही भाषा। दक्षिण आफ्रिका और उत्तर आफ्रिका की पोशाक में कुछ फर्क जरूर था क्योंकि दोनों स्थानों के जलवायु में थोड़ा अन्तर था। पर पोशाक सुविधा के विचार से थी।

वहां से अरब आया। अरब का मरुस्थल भी अब समाप्त हो गया था यहां भी स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष थीं। वही मानवधर्म मानवभाषा मानवलिपि यहां भी थी।

अरब से तुर्किस्तान और ईराक होता हुआ ईरान आया, अन्य देशों की तरह यहां भी काया-पलट हो गई थी। वहां से रूस में घुसा रूस की सीमा में घुसते ही मेरी आंखें भर आईं और मैंने भक्ति से गद्गद होकर रूस को प्रणाम किया। यह वही देश है जिस ने सब से पहिले मानवता की ज्योति जगाई थी और दुनिया को बतलाया था कि साम्राज्यवाद और पूंजीवाद को हटा देने से और मनुष्यमात्र में एक कौटुम्बिकता और एक जातीयता का भाव ला देने से किस प्रकार इसी दुनिया को कल्पित स्वर्ग से भी महान बनाया जा सकता है। जब अन्य देशों में वही पुरानी जंगली

दुनिया थी तभी रूस ने नई दुनिया को अपनाया था। उस समय शिक्षण का विकास जल्दी हो इसलिये रूस ने हर एक प्रान्तीय भाषा का अधिक से अधिक प्रचार किया था, पर धीरे धीरे वे सब भाषाएँ अजायबघर की चीज हो गईं। अब तो यही मानव भाषा यहां भी चलती है जो पृथ्वी के सब राष्ट्रों ने मिलकर बनाई है, जिसे मैं हिन्दुस्तान आस्ट्रेलिया आफ्रिका आदि में सुनता बोलता आया हूं।

रूस की वन्दना कर मैं यूरोप में घुसा। अब रूस को छोड़ बाकी यूरोप का एक ही देश है। जर्मनी, इटली, बल्कान, फ्रान्स, स्पेन, पोर्तगाल, इंग्लेण्ड, बेल्जियम स्वीडन नार्वे का दक्षिणी बहुभाग आदि का एक ही देश राष्ट्र है। फिनलेंड पोलेण्ड रूस में शामिल हैं। इस्टोनिया आदि छोटे छोटे देश तो कभी के रूस में शामिल हैं। पेरिस यूरोप की राजधानी है।

एक जाति, एक भाषा आदि हो जाने से और राष्ट्रीयता की संकुचित भावना नष्ट हो जाने से, तथा व्यक्ति व्यक्ति में, वर्ग वर्ग में, शहर गांव में, प्रान्त प्रान्त में, देश देश में शोषक शोषित सम्बन्ध न होने से अब इस बात का किसी को खयाल नहीं आता कि हमारी राष्ट्रीय सीमा क्या है और हमें किन में मिलना चाहिये किन में नहीं। अब यूरोपियन देशों के साम्राज्य कहीं नहीं हैं। पर फिर भी वे पहिले की अपेक्षा अधिक समृद्ध सुखी हैं। इंग्लेण्ड, जो एक दिन हिंदुस्तान आदि को लूट लूट कर मोटा कहलाता था। आज उससे भी अधिक मोटा समृद्ध और सुखी है यद्यपि अब इंग्लेण्ड यूरोप का सिर्फ एक प्रान्त है और उसका राज्य और कहीं

नहीं है। अब वहां के बच्चों को कठिन भाषा के साथ लेटिन रटने की बेवकूफी नहीं करना पड़ती। मानव भाषा ही अब सारे यूरोप की भाषा है।

इंग्लेण्ड से मैं संयुक्त राज्य अमेरिका पहुंचा। अब वह संयुक्त-राज्य नहीं रहा किन्तु सारे उत्तर अमेरिका का एक राज्य हो गया है। संयुक्तराज्य में कनाडा अलास्का और मेक्सिको भी शामिल हो गये हैं। और सब का एक राष्ट्र बन गया है। दक्षिण में इसकी हद पनामा नहर है। पनामा के दक्षिण में दक्षिण अमेरिका है। ब्राजिल, अर्जेंटाइना, पेरू, चिली, कोलंबिया आदि सभी छोटे छोटे राष्ट्र मिलकर एक हो गये हैं। अमेरिका में न अब कहीं इंग्लेण्ड का प्रभाव है न स्पेन का। और न पुराना संयुक्तराज्य दक्षिण अमेरिका पर आर्थिक वर्चस्व भोग रहा है। सब जगह वही मानव भाषा मानव लिपि का राज्य है।

अमेरिका से मैं जापान आया। अब यह पहिले से अधिक समृद्ध हो गया है। अब यहां बार बार भूकम्प नहीं होते इसलिये लकड़ी के मकानों की अपेक्षा चूना सिमिंट के बड़े बड़े मकान ज्यादः बन गये हैं। जापान अब चीन का प्रान्त है।

कोरिया भी चीन का प्रान्त है पर अब जापान या कोई दूसरा उसका शोषण नहीं करता। उधर से चीन में आया। सारा चीन खूब समृद्ध हो गया है। एक दिन चीन की यह दुर्दशा थी कि जापान सरीखा एक छोटा सा बच्चा उसे पददलित करके लूट खसोट डालता था। अब चीन प्रशान्तमहासागर के द्वीपों के

साथ समृद्ध एक देश है। पुरानी चित्रलिपि सरीखी लिपि उठ गई है वहाँ मानव भाषा और और मानवलिपि है।

चीन से निकल कर मैं सैबेरिया में घुसा। पहिले सैबेरिया के दक्षिणी भाग में पूर्व से पश्चिम तक रेलगाड़ी दौड़ती थी पर अब सैबेरिया पहिले से कई गुणा आबाद हो गया है। बेरिंग के किनारे से लेकर लेलिन नगर तक उत्तर सैबेरिया में भी पूर्व से पश्चिम तक बड़ी रेलवे लाइन हैं। और उत्तर दक्षिण की इन दोनों लाइनों को मिलानेवाली अनेक शाखाएँ हैं। अब आर्कटिक महासागर के किनारे भी घनी बस्तियाँ हैं और बिजली ने हिमपात पर विजय पाई है।

सैबेरिया से मैं फिर रूस में घुसा। मानवता के इस महान तीर्थस्थान में दूसरी बार अपने को पाकर मैंने अपने को अधिक पवित्र समझा। उधर से मैं दक्षिण की ओर आया। आमू नदी पारकर अफगानिस्तान में आया। अब अफगानिस्तान हिन्दुस्तान का ही प्रान्त है हिन्दूकुश अब हिन्दुस्तान की सीमा बन गया है अफगानिस्तान के जंगलों में अब रेलें दौड़ती हैं। हिन्दूकुश को रेल द्वारा जब पार किया तब हर्ष के मारे मेरी आखों में आसू आ गये।

मैंने देखा कि पृथ्वी में सब जगह यातायात की इतनी सुविधाएँ हो गई हैं कि बिना किसी अड़चन के किसी भी मार्ग से सब जगह जाया जा सकता है। एशिया यूरोप अमेरिका आफ्रिका और आस्ट्रेलिया तक रेल से मिले हुए हैं। बीच बीच में जहाँ थोड़ा सा समुद्र आ जाता है वहा रेल गाड़ी को जहाज में बिठला दिया जाता है। हवाई जहाज की यात्रा रेल की तरह ही आराम

की हो गई है। बड़े बड़े अभ्रंकष पहाड़ अब आदमियों की चहल पहल के केन्द्र बने हुए हैं। हिमालय के जिस गौरीशंकर शिखर को मनुष्य कभी नहीं छू सका था, और जिस पर पहुंचने के लिये सैकड़ों मनुष्यों ने प्राण गमाये थे उस शिखर पर अब हवाई जहाज का स्टेशन है, मुसाफिरखाना और भोजनालय है। अब सैकड़ों आदमी वहां चहलकदमी के लिये प्रति दिन आते हैं प्राणवायु की कमी की अब इतनी तकलीफ नहीं होती। मैं भी वहां पहुंचा और एक बार चारों तरफ नजर डालकर नये संसार को प्रणाम किया।

(१९) नये संसार की शासन प्रणाली

नये संसार को सारे संसार का एक राज्य कहना चाहिये। क्योंकि सारे संसार की एक भाषा है एक लिपि है सब में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध है, हर एक आदमी इच्छानुसार या सुविधानुसार जहां चाहे बस सकता है और सारे संसार का एक संघ है। आने जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, आयात निर्यात पर कहीं टैक्स नहीं है एक ही सिक्का सारे संसार में चल सकता है। शासन विभाग की सुविधा के लिये अलग अलग केन्द्र जरूर हैं पर अन्त में सारे संसार का एक राष्ट्र संघ है। इस प्रकार सारा संसार एक राष्ट्र है।

इस विश्व राष्ट्र शासन की इकाई है ग्राम-पंचायत। ग्राम पंचायत में जन संख्या के अनुसार दस से पंद्रह सदस्य होते हैं जिसे गांव का हर एक आदमी चुनता है। सोलह वर्ष से ऊपर के हर एक व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष मत देने का अधिकार है।

चुनाव के लिये कोई आदमी खुद खड़ा नहीं हो सकता, कम से कम पचास आदमी अपने हस्ताक्षरों से किसी आदमी को उम्मेदवार खड़ा करते हैं। जो आदमी उम्मेदवार खड़ा किया जाता है उसे मतदाताओं की संख्या की अपेक्षा आधे मत तो मिलना ही चाहिये। अगर प्रतिस्पर्द्धी में कोई दूसरा आदमी न खड़ा किया गया हो तो भी उसे आधे मत तो मिलना ही चाहिये।

अधिकतर होता यह है कि शाम-सबेरे रंगभवन की चहल-पहल में इस बात का निर्णय हो जाता है कि गांव के किस विभाग से किस आदमी को चुनना चाहिये। इसका यह मतलब नहीं है कि जो जिस विभाग से चुना जाय वह उसी विभाग में रहनेवाला भी हो। गांव के किसी भी भाग में रहने वाला किसी भी विभाग से चुना जा सकता है। इस अनियमित निर्णय होने के बाद उम्मेदवार खड़ा करने के लिये मुहल्ले-मुहल्ले में छोटी-छोटी सभाएँ होती हैं और उसमें उम्मेदवार से कहा जाता है कि हम तुम्हें चुनाव के लिये खड़ा करते हैं।

उम्मेदवार नम्रता के साथ कहता है कि मेरी समझ में अमुक श्रीमान या श्रीमतीजी को खड़ा करना चाहिये यद्यपि मैं आप लोगों की आज्ञा के बाहर नहीं हूं फिर भी आप लोग फिर भी विचार करें। इस प्रकार उम्मेदवार से अनुमति लेकर उसे खड़ा किया जाता है और गुप्त मतदान पद्धति से उसे चुन लिया जाता है। सौ में एकाध ऐसी भी घटना होती है कि जब एक ही जगह के लिये दो उम्मेदवार होते हैं। ऐसी हालत में उम्मेदवारों की तरफ से कोई कोशिश नहीं की जाती। चुनाव में किसी को कुछ खर्च

नहीं करना पड़ता। नई दुनिया के मतदाताओं को एक तो कोई फुरसत नहीं सकता दूसरे इस प्रकार का प्रयत्न अक्षन्तव्य अपराध समझा जाता है।

जब चुनाव होजाता है तब चुनी हुई पंचायत खासखास काम करने वालों को नियुक्त करती है। इस नियुक्ति में पंचायत से बाहर के लोग भी आसकते हैं इसलिये होता यह है कि प्रायः बाहर के लोग ही ज्यादः नियुक्त होते हैं। पंचायत के कार्य गुप्त नहीं होते। दर्शक के रूप में कोई मतदाता वहां हाजिर रह सकता है और पूछ-ताछ भी कर सकता है। और मत-दाता लोग अपने प्रतिनिधि को वापिस भी ले सकते हैं।

पंचायत को गांव का हिसाब किताब, नफा-नुकसान आदि सब बातों का प्रबन्ध करना पड़ता है। साधारण झगड़ों का निबटारा भी वही करती है। इसके अतिरिक्त वाचनालय शिक्षण-रक्षा सफाई आदि का भी प्रबन्ध वही करती है।

ग्राम पंचायत के ऊपर जिला पंचायत होती है। जिलेभर के बालिग व्यक्ति इसका चुनाव करते हैं।

इसीप्रकार प्रान्त पंचायत का चुनाव भी प्रान्तभर के बालिग मताधिकार से होता है।

पर राष्ट्र पंचायत का चुनाव सीधा नहीं होता वह प्रान्त-पंचायतों से होता है। और राष्ट्र-पंचायतें मिलकर विश्वसंघ का निर्माण करती हैं।

विश्वसंघ के कार्य में विश्व न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस, अन्तर्राष्ट्रीय यातायात, सब समुद्री स्टेशनों का प्रबन्ध, सीमा

चांदी लोहा कोयला तेल आदि की खदानों का प्रबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय लेनदेन आदि हैं।

राष्ट्रीय पंचायत के हाथ में राष्ट्रीय न्यायालय, राष्ट्रीय पुलिस अन्तर्प्रान्तीय यातायात और लेनदेन, आदि है।

प्रान्तीय पंचायत में प्रान्त से सम्बन्ध रखने वाले सब विषय हैं। इसी प्रकार जिला पंचायत में जिले से सम्बन्ध रखनेवाले।

कहीं पर दैवकोप से उपज कम हो उसका समीकरण तो किया जाता है। एक गांव के घाटे को दूसरे गांव, एक जिले के घाटे को दूसरे जिले, एक प्रान्त के घाटे को दूसरे प्रान्त, और एक राष्ट्र के घाटे को दूसरे राष्ट्र या विश्वसंघ पूरा करता है।

अगर किसी प्रदेश की उपज से जनसंख्या का अच्छी तरह निर्वाह नहीं होता तो उधर के आदमी दूसरी जगह बसाकर समीकरण कर लिया जाता है। किसी में भी जातीय या राष्ट्रीय भेद-भावना न होने से इसमें कोई अड़चन नहीं होती।

इस प्रकार राज्य पूरी तरह सेवक संस्था बन गया है। उसकी भयंकरता नष्ट हो चुकी है। हर एक आदमी की आवाज का मूल्य है। दुरभिमान और रूढ़िप्रियता न होने से हर तरह के सुधार तुरन्त किये जाते हैं।

(२०) क्या क्या पाया

नये संसार में करीब पचास हजार मील की यात्रा मैंने की और प्रायः सभी देश मैंने देखे पर निम्न लिखित चीजें कहीं न दिखाई दीं।

१—सेना—विश्व का एक संघ बन जाने से तथा शोषण न रहने से अब युद्ध होते ही नहीं इसलिये किसी राष्ट्र के पास सेना नहीं है। सैनिक शब्द एक गाली हो गया है और यह गाली उन्हें दी जाती है जो न्याय के आगे झुकने में आनाकानी करते हैं या अपनी शारीरिक ताकत का थोड़ा बहुत अभिमान प्रदर्शित करते हैं। यद्यपि इतनी कठोर गाली देने का मौका बहुत कम आता है।

२—भिखारी—सब को काम देना समाज या सरकार का काम है, साधुओं का इन्तजाम भी सरकार करती है इसलिये किसी को भीख नहीं मांगना पड़ती। अनाथ बालकों वृद्धों आदि का पालन पोषण भी सरकार करती है। विशेष बीमार और पागल आदि को खिलाने की जिम्मेदारी भी सरकार पर है इसलिये उन्हें भी भीख मांगने की जरूरत नहीं है। हालांकि पागल आदि कहीं दिखते नहीं हैं।

३—बादशाह राजा नवाब अधिनायक—शुद्ध प्रजातन्त्र होने से इनकी जरूरत ही नहीं है।

४—जमींदार अमीर गरीब—शोषण न होने से ये भी नहीं रहे हैं। हां! सब सुखी हैं और समृद्ध हैं इसलिये सब को अमीर जरूर कह सकते हैं पर यह तो सारे नये संसार की अमीरी हुई, व्यक्ति विशेष की नहीं।

५—जातिभेद—सब की एक ही मनुष्य जाति है। अब भोजन और विवाह सब का सब जगह हो सकता है। पुरानी जाति पांति अब निर्मूल हो गई है। अछूत वगैरह का अब कहीं पता भी नहीं है।

६-धर्मभेद-अब सत्य ही सब का धर्म है। हिन्दू धर्म, इसलाम, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि धर्म या सम्प्रदाय अब नहीं हैं।

७-खूनी-आर्थिक कारणों से तो खून होते ही नहीं, किन्तु अहंकार आदि भी अब इतनी मात्रा में नहीं हैं कि उनसे खून की नौबत आ जाय।

८-चोर-गरीबी न होने तथा नैतिक संस्कार वातावरण के कण कण में भरे होने से मामूली चोर भी नहीं हैं। और सिर्फ धनचोर ही नहीं, किन्तु नामचोर भी नहीं हैं।

९-ऋणग्रस्त, साहूकार-पूंजीवाद के अभाव से अब साहूकारी धन्धा गैरकानूनी हो गया है। और आमदनी से अधिक खर्च करने की मनाई है इसलिये कोई ऋणग्रस्त नहीं है। विशेष आवश्यकता पर सरकार मदद करती ही है।

१०-अपढ-शिक्षा अनिवार्य है इसलिये छोटे बच्चों को छोड कर और कोई अपढ़ नहीं है।

११-बेकार-सब को योग्यतानुसार काम दिया जाता है और उसके योग्य वेतन, तब बेकार कौन रह सकता है? अब किसी को जवानी के प्रारम्भ में जीविका के लिये चिन्तित नहीं रहना पड़ता न दर दर भटकना पड़ता है।

१२-कायर-अपने कर्तव्य को पूरा करने में कोई मरते दम तक पीछे नहीं हटता।

१३-लांच रिश्वत-पहिले तो जनता ही इतनी सजग और अपने अधिकारों को जानने वाली और दूसरों की सुविधा छीनने को पाप

समझने वाली है इसलिये वह किसी को लांचरिश्वत दे नहीं सकती, फिर सरकारी नौकर भी इतने नीच प्रकृति के नहीं होते कि रिश्वत की परिस्थिति पैदा करें और रिश्वत लें, अगर ऐसी घटना हो जाय तो किसी भी आदमी की शिकायत पर ऊंचे से ऊंचे दर्जे के अधिकारी को ध्यान देना पड़ता है। अगर रिश्वत की छोटी-सी भी घटना हो जाय तो सारी प्रजा में खलबली मच जाय, और लांच लेने वाले को लज्जा के मारे जिन्दा रहना तक मुश्किल हो जाय। इसलिये लाच-रिश्वत या इसी रूप में दिये गये इनाम आदि कोई नहीं लेता।

१४–व्यभिचार–वैवाहिक स्वतन्त्रता सुविधा पूरी है इसलिये व्यभिचार का कोई कारण नहीं।

१५–वेश्या–न स्त्रियों पर सामाजिक अत्याचार होते हैं न उन्हें जीविका की कमी है इसलिये वेश्या आदि प्रथा है ही नहीं।

१६–बलात्कार–नारी न तो अब लाचार है और न पुरुष में ऐसी शैतानियत है कि बलात्कार की घटनाएं हो सकें।

१७–अकाल–यातायात के साधन इतने बढ़ गये हैं और विश्वमात्र में भाईचारा इतना बढ़ गया है कि एक जगह के संकट को दूर करने के लिये सारा संसार सहायता को दौड़ पड़ता है। इसके सिवाय प्रकृति पर इतनी विजय भी पाली गई है कि अकाल पड़ने नहीं पाते।

१८–अनाथ–अकाल मृत्युओं के न होने और बाल वृद्धों के पालन पोषण की जिम्मेदारी सरकार के हाथ में होने से कोई अनाथ नहीं होता।

१९–विशेष रोगी–खानपान संयम, वंशपरम्परा से आई हुई बीमारियों का उन्मूलन, तथा चिकित्सा शास्त्र का असाधारण विकास हो जाने से कुष्ठ, हिस्टीरिया, क्षय आदि बीमारियाँ होतीं ही नहीं।

२० मांस भक्षण–संसार में अन्न की बहुतायत होने से तथा मनुष्य का हृदय दयालु हो जाने से, मांस भक्षण कोई नहीं करता। यहाँ तक कि अब पशुवध भी कोई नहीं करता। अनावश्यक और घातक पशु पक्षी अब कहीं रह भी नहीं गये हैं।

२१–धूमपान–बीड़ी सिगरेट अब कोई नहीं पीता, इससे स्वास्थ्य नाश भी होता है, हवा बिगड़ने से या तमाखु के धुएँ से दूसरों को कष्ट भी होता है इसलिये यह पाप और असभ्यता कोई नहीं करता।

२२ मद्यपान–दवाई के सिवाय अब मद्य का उपयोग कोई नहीं करता।

२३–जुआड़ी–जूआ कोई नहीं खेलता।

२४–दंभी साधु–समाज के विवेक पूर्ण होने से तथा अन्याय आदि की मनोवृत्ति न रहने से एक तो साधुओं की आवश्यकता नहीं के बराबर रह गई है और जो थोड़ी बहुत आवश्यकता है उसकी पूर्ति खास खास ज्ञानी और सेवक व्यक्ति करते हैं, पर उन्हें जीविका या मानप्रतिष्ठा की पर्वाह नहीं होती इसलिये उन्हें दम्भ की जरूरत भी नहीं पड़ती।

२५–गुंडा–नये संसार वालों को इस शब्द का अर्थ समझना भी कठिन है।

२६–घूंघट पर्दा–नारी हर बात में पुरुष के समकक्ष है इसलिये इस पागलपन और इस कायरता की कल्पना भी नये-ससार में कोई व्यक्ति नहीं कर सकता।

२७ कृतघ्न–लोग हर एक के उपकार को बड़े ध्यान से याद रखते हैं और कृतज्ञ बनने में अपना गौरव समझते है।

२८ घातक जीवजन्तु–शेर बाघ, साप बिच्छू, छिपकली, शूकर, हरिण, गीदड़, भेड़िया, खटमल मच्छर, टिड्डी आदि जीव जन्तु अब कहीं नहीं हैं। हां अजायबघर में जानकारी के लिये रक्खे गये हैं।

इस प्रकार पुरानी दुनिया से बहुत भी खराब चीजें निर्मूल हो गई हैं। हा! पुरानी दुनिया के चित्रण में ये चीजें सिनेमा या नाटकों में दिखाई देती हैं फिर भी बहुत सी चीजें इस रूप में भी दिखाई नहीं जातीं।

२?–क्या क्या घटा

नये संसार में बहुत-सी बुराइयाँ निर्मूल ही हो गई हैं पर कुछ ऐसी हैं जो बिलकुल निर्मूल तो नहीं हो पाई फिर भी बहुत घटगई हैं।

१–विधवा या विधुर–अकाल मरणों में एकदम कमी होने से विधवा विधुर बहुत ही कम होते हैं।

२–झगड़े–मामूली बातचीत के झगड़े रह गये हैं वे भी बहुत कम। मारपीट के झगड़े तो प्रायः सुने ही नहीं जाते।

३–बीमार–बहुत कम आदमी बीमार होते हैं।

४–चाय–चाय का रिवाज बहुत घट गया है। कभी कहीं कोई औषध के रूप में कभी कभी लेता है। व्यसन किसी को नहीं है।

५–पहरेदार–चोरों के न होने से पहिरेदार करीब करीब हैं ही नहीं। बहुत ही महत्वपूर्ण स्थानों में एक-एक दो-दो पहिरेदार रहते हैं।

६–भाषाएँ और लिपियाँ–पहिले ऊटपटाग या अनियमित सैकड़ों भाषाएं थीं पर अब दुनिया में एक ही मानवभाषा और मानव-लिपि चलती है। हां! शीघ्र लेखन की संक्षिप्त लिपि अवश्य है तथा विशेष प्रसग के लिये सांकेतिक भाषा भी।

७–वकील–न्यायालयों की जटिलताएँ न होने से वकील अब बहुत कम हो गये हैं।

८–वैयक्तिक नौकर–व्यक्तिगत या घरू कामों के लिये अब नौकर नहीं रक्खे जाते। सब स्वावलम्बन से काम लेते हैं। इसके सिवाय अब घरू काम भी बहुत कम रह गये हैं। क्योंकि सार्वजनिक भोजनालय तथा मशीनों ने घरू काम बहुत कम कर दिये हैं। वृद्ध-नगर में तथा बहुत असाधारण व्यक्तियों के घरों में सरकार की अनुमति से घरू काम के लिये नौकर–या सहयोगी–मिलते हैं।

९, असत्य वचन–झूठ प्रायः लोग बोलते ही नहीं। अजानकारी आदि से कभी किसी के मुंह से झूठ निकल जाय तो बात दूसरी है।

१० तलाक–वैवाहिक सम्बन्ध जीवन भर निभाया जाता है।

काल में एकाध दम्पति के तलाक की बारी आती है।

२२—क्या क्या बढ़ा

१ शालाएँ—अब हर एक गाव में पाठशाला जरूर है और हर एक बालक और बालिकाको शिक्षण लेना पड़ता है।

२ वाचनालय—हर एक गाव में हैं और बड़े व्यवस्थित हैं।

३ पुस्तकें—पाठकों की संख्या बढ़ जाने से पुस्तकों का प्रकाशन काफी होता है। हर एक घर में एक छोटासा पुस्तक भंडार मिलेगा।

४ यातायात—आने जाने के साधन खूब बढ़ गये हैं। हर एक गाव पक्की सड़क के द्वारा दूसरे गांवों से जुड़ा हुआ है इसी प्रकार ट्राम से भी जुड़ा हुआ है। रेलें और हवाई जहाज खूब बढ़ गये हैं। नदियों के द्वारा भी यातायात बढ़ गया है।

५ टेलीफोन—गांव गाव में है।

६ रेडियो—घर घर में है।

६ फर्नीचर—हर एक घर में दो तीन मेजें चार पाच कुर्सियाँ, दो तीन बेंचे, एकाध आलमारी और तीन चार पलंग जरूर होते हैं।

८ प्रकाश—गांवों की भी सड़कों पर बिजली की बत्तियाँ है और घरों में भी हैं।

९ बिजली—कारखानों, घरू मशीनों, रेल ट्राम, प्रकाश आदि के सभी काम बिजली से होते हैं इसलिये बिजली खूब बढ़ गई है।

१० यंत्र—घर घर में मशीने हैं।

११ स्वच्छता—घर, सड़कें, खेत, जानवरों के स्थान सब

साफ हैं।

१२ बगीचे–हर एक गांव में एक न एक बगीचा होता ही है।

१३ सिनेमा–अब गांव गांव में पहुँचे हैं।

१४ ललित कलाएँ--हर एक आदमी को काफी आराम मिलता है इसलिये गाना बजाना नृत्य चित्र आदि ललित कलाओं का खूब विकास और प्रसार हुआ है।

१५ खाद्य–अन्न फल और दूध की उत्पत्ति खूब बढ़ गई है।

१६ वस्त्र--अब कोई फटे कपड़े या चिथड़े पहिने नहीं रहता।

१७–घर–घरों की संख्या तो विशेष नहीं बढ़ी है पर उनका परिमाण बढ़ गया है। अब हर एक कुटुम्ब को अच्छा बड़ा मकान मिलता है।

१८ जानकारी--लोगों की जानकारी खूब बढ़ गई है।

१९ संयम--ईमानदारी, सत्यवचन, इन्द्रियविजय, शान्ति, विनय आदि संयम हर एक में बढ़ गया है।

२० सभ्यता–अतिथि सत्कार, शिष्टाचार, कृतज्ञता आदि गुण भी खूब बढ़े हैं।

२१ कर्मठता–श्रम-प्रतिष्ठा, वीरता, निर्भयता आदि गुण भी खूब बढ़े हैं इससे मनुष्य खूब कर्मशील बन गया है। आलसी और कामचोर व्यक्ति अब ढूंढ़ने से मुश्किल से मिलेंगे वे भी बहुत थोड़ी मात्रा में।

२२ सौन्दर्य--शरीर अब बहुत सुडौल और सुन्दर होता

है। पुरानी दुनिया सरीखे बदसूरत आदमी तो कहीं दिखाई ही नहीं देते।

इस प्रकार मानव जीवन को सुखी करनेवाले अनेक गुण और साधन बढ़ गये हैं।

ऐसा है यह नया संसार।

उपसंहार

नये संसार का यह ऐसा चित्र है जिसे कसौटी बनाकर वर्तमान परिस्थिति की समीक्षा करना चाहिये और जहां जो कमी मालूम हो वहां उसकी पूर्ति चाहिये। आशा यह की गई है कि सौ दो सौ वर्ष के भीतर इस संसार की सुधारणा नये संसार सरीखी हो जाय। होने को तो यह भी हो सकता है कि किसी किसी बात में—खासकर वैज्ञानिक क्षेत्र में-आज से सौ वर्ष बाद का जमाना नये संसार में चित्रित जमाने से भी आगे बढ़ जाय फिर भी असली कसौटी मनुष्य मनुष्य के बीच का पारस्परिक सहयोग सम्बन्ध आदि है और है उसी सर्वकल्याणकर सामाजिकता को कसौटी बना कर मनुष्यमात्र का आध्यात्मिक विकास। यह विकास ही नये संसार का वास्तविक चिन्ह है।

समाप्त